मूल्य : ₹ 30

जून 2025

आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप
ICAR

खेती

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

• इस अंक में •

सतत कृषि हेतु उन्नत उपकरण

दलहनी फसलों में खरपतवार प्रबंधन

भेड़ों में खुरपका रोग की रोकथाम

वैज्ञानिक मत्स्यपालन से समृद्धि

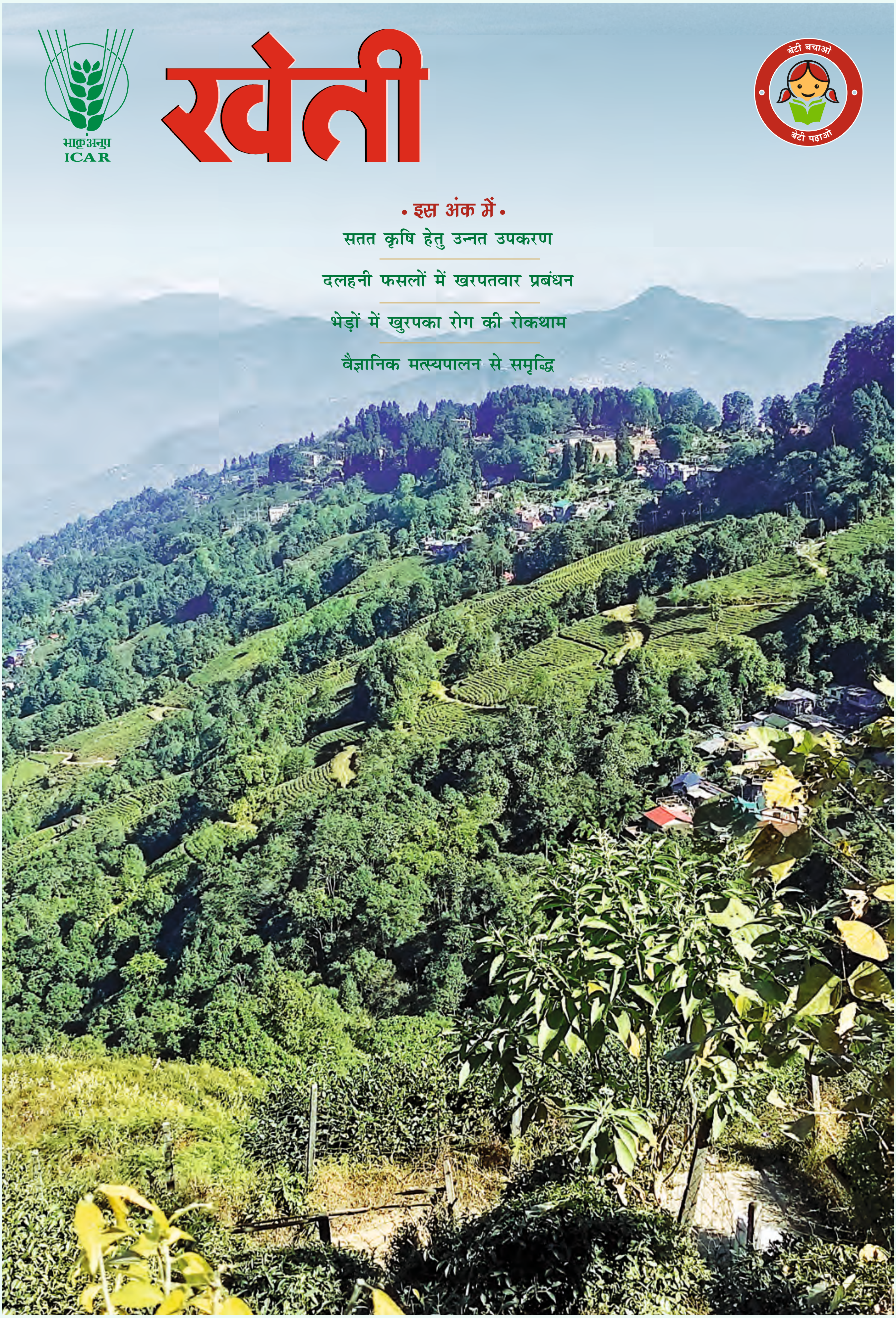

कृषि पर प्लास्टिक प्रदूषण का प्रभाव

प्लास्टिक प्रदूषण आज वैश्विक स्तर पर एक गंभीर पर्यावरणीय समस्या बन चुका है, जिसका प्रभाव केवल शहरों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों और कृषि भूमि तक भी फैल चुका है। खेतों में उपयोग होने वाली प्लास्टिक-जैसे मल्चिंग शीट, सिंचाई पाइप, उर्वरकों की पैकेजिंग आदि मृदा की उर्वराशक्ति, जल गुणवत्ता और फसल उत्पादन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रही है। इसके साथ ही मत्स्य एवं पशु पालन पर भी प्लास्टिक प्रदूषण का गहरा प्रभाव पड़ रहा है। इस प्रकार विश्व पर्यावरण दिवस 2025 का विषय 'प्लास्टिक प्रदूषण का अंत' हमें यह सोचने पर मजबूर करता है, कि कृषि प्रणाली को कैसे अधिक सतत, स्वच्छ और पर्यावरण-अनुकूल बना सकते हैं।

विश्व पर्यावरण दिवस प्रतिवर्ष 5 जून को मनाया जाता है। इसका उद्देश्य पर्यावरण से संबंधित मामलों के बारे में विश्वभर में जागरूकता पैदा करना और इसके प्रति सरकारी ध्यान आकर्षित करके कार्यवाही को प्रोत्साहित करना है। इस वर्ष विश्व पर्यावरण दिवस 2025 का विषय 'प्लास्टिक प्रदूषण का अंत' है। इस वैश्विक समारोह की मेजबानी इस वर्ष 'कोरिया गणराज्य' को सौंपी गई है।

आज की आधुनिक कृषि प्रणाली में प्लास्टिक का उपयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है। मल्चिंग, सिंचाई, बीज संरक्षण, उर्वरक और कीटनाशक पैकेजिंग से लेकर फसल कटाई तक, प्लास्टिक का उपयोग कृषि में अनिवार्य बन गया है। इस सुविधा ने एक गंभीर समस्या को भी जन्म दिया है-प्लास्टिक प्रदूषण। प्लास्टिक, विशेषकर सिंगल यूज प्लास्टिक, खेतों में रहकर, मृदा की गुणवत्ता को नष्ट करती है, जल स्रोतों को प्रदूषित करती है और अंततः इससे फसल उत्पादन प्रभावित होता है।

फसल उत्पादन पर प्रभाव

मृदा उर्वरता में कमी

प्लास्टिक अपशिष्ट खेतों की मृदा में वर्षों तक बना रहता है। जब प्लास्टिक धीरे-धीरे टूटती है, तो वह सूक्ष्म प्लास्टिक में बदल जाती है। ये कण मृदा के पोषण चक्र को बाधित करते हैं। इसके साथ ही ये मृदा में उपस्थित लाभकारी सूक्ष्मजीवों को नष्ट कर देते हैं, जो फसल की वृद्धि में सहायता करते हैं। इससे मृदा की उर्वराशक्ति और जैविक गतिविधियां प्रभावित होती हैं, जिससे उत्पादन घटता है।

जल निकासी और जलधारण क्षमता में बदलाव

प्लास्टिक की परतें मृदा की सतह को ढक देती हैं, जिससे जल का प्राकृतिक बहाव बाधित होता है। इससे जलभराव की समस्या बढ़ जाती है, खासकर भारी वर्षा के समय। दूसरी ओर सूक्ष्म प्लास्टिक के कण मृदा की जलधारण क्षमता को भी प्रभावित करते हैं, जिससे सूखे के समय फसलों को आवश्यक पानी नहीं मिल पाता।

परंपरागत प्लास्टिक की जगह
बायोडिग्रेडेबल मल्च फिल्में उपयोगी

फसल की गुणवत्ता में कमी

प्लास्टिक प्रदूषण के कारण मृदा और पानी में विषैले रसायनों की मात्रा बढ़ जाती है। कुछ अध्ययन बताते हैं कि प्लास्टिक कण फसलों में भी प्रवेश कर सकते हैं, जिससे फसलों की खाद्य गुणवत्ता और पोषण मूल्य घट सकता है। इससे मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पौधों की वृद्धि में रुकावट

सूक्ष्म प्लास्टिक कण पौधों की जड़ों के आसपास इकट्ठे होकर पोषक तत्वों के अवशोषण में बाधा उत्पन्न करते हैं। यह पौधों की वृद्धि को धीमा कर देता है और पैदावार में कमी लाता है। इसके साथ ही, प्लास्टिक की वस्तुएं जैसे कि मल्चिंग फिल्में यदि ठीक से हटाई न जाएं, तो पौधों के जीवनचक्र में हस्तक्षेप करती हैं।

जैव विविधता पर प्रभाव

खेत के आसपास छोड़े गए प्लास्टिक अपशिष्ट से मृदा और जल में विषैले रसायन मिलते हैं, जो पक्षियों, लाभकारी कीटों और अन्य सूक्ष्मजीवों को नुकसान पहुंचाते हैं। इससे प्राकृतिक जैव विविधता घटती है, जो परागण, कीट नियंत्रण और मृदा की उर्वरता के लिए बेहद जरूरी है।

पशुधन पर असर

खेतों के पास छोड़े गए प्लास्टिक अपशिष्ट को पशु निगल लेते हैं, जिससे उनकी सेहत पर बुरा असर पड़ता है। कई बार इससे पशुओं की मृत्यु भी हो जाती है। परिणामस्वरूप पशु उत्पादन प्रभावित होता है।

मत्स्य पालन पर प्रभाव

प्लास्टिक प्रदूषण मात्स्यिकी क्षेत्र के लिए भी बेहद हानिकारक है। यह जल निकायों की गुणवत्ता, मछलियों के जीवनचक्र और आर्थिक आजीविका को सीधे प्रभावित करता है। प्लास्टिक अपशिष्ट तालाबों, नदियों, झीलों और समुद्रों में पहुंचकर पानी को विषैला बना देता है। सूक्ष्म प्लास्टिक मछलियों के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, जिससे उनकी प्रजनन क्षमता, वृद्धि और जीवनकाल प्रभावित होता है। मछलियां प्लास्टिक

प्लास्टिक प्रदूषण का मात्स्यिकी पर गहरा प्रभाव

कणों को आहार समझकर निगल जाती हैं, जिससे उनका पाचन तंत्र बाधित होता है और मृत्यु हो सकती है। प्लास्टिक में उलझकर भी कई जलीय जीव मर जाते हैं (जैसे मछलियां, झींगें आदि)। प्रदूषित जल में मछली उत्पादन घटता है, जिससे मत्स्यपालकों की आजीविका प्रभावित होती है। इसके साथ ही पर्यटन और मत्स्य-निर्यात उद्योग को भी नुकसान होता है।

जल प्रबंधन

- स्वच्छ जल अभियान और नदी-समुद्र सफाई कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।
- बायोडिग्रेडेबल मछली पकड़ने के जाल और उपकरणों का उपयोग करना।
- मत्स्य पालन क्षेत्रों में प्लास्टिक के उपयोग पर नियंत्रण।
- जागरूकता कार्यक्रम और सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से उन्नत प्रबंधन।

प्लास्टिक प्रदूषण से सतत समाधान हेतु स्वच्छ कृषि को अपनाना आवश्यक है। इसके अंतर्गत जैविक एवं प्राकृतिक कृषि को प्रोत्साहन देना, परंपरागत प्लास्टिक की जगह बायोडिग्रेडेबल मल्च फिल्में और प्लास्टिक की जगह प्राकृतिक फाइबर से बने बोरे, पैकेजिंग का उपयोग करना चाहिए। खेतों में प्लास्टिक अपशिष्ट का उन्नत प्रबंधन जैसे संग्रहण, छंटाई और पुनर्चक्रण जैसी क्रियाएं शामिल हैं, को तत्काल अपनाना आवश्यक है। इसके साथ ही किसानों, वैज्ञानिकों, नीति-निर्माताओं और आमजन सभी को मिलकर इस दिशा में कदम उठाने होंगे। स्वच्छ, हरित और प्लास्टिक-मुक्त खेती ही एक समृद्ध और सुरक्षित भविष्य की कुंजी है। ■

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका

वर्ष: 78, अंक: 2, जून 2025

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. विनोद कुमार सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद
4. **डा. धीर सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
5. **डा. के.के. सिंह** — **सदस्य**
   कुलपति
   सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
   मोदीपुरम, मेरठ
6. **श्री हर्षवर्धन** — **सदस्य**
   प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली
7. **श्री रितु राज** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **सुश्री नीलम त्यागी** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल
संपादक
सुनीता अरोड़ा
संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक : रु. 300.00
विशेषांक : रु. 100.00
E-mail : khetidipa@gmail.com

आवरण चित्र
अशोक सिंह

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

इस अंक में

निदेशक की कलम से — वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों का कृषि पर प्रभाव, **अनुराधा अग्रवाल**

4 प्रौद्योगिकी
सतत कृषि हेतु उन्नत उपकरण
शालिनी चतुर्वेदी, अतुल कुमार श्रीवास्तव **और** इंद्रवीर सिंह

6 नियंत्रण
दलहनी फसलों में खरपतवार प्रबंधन
सुमित्रा देवी बम्बोरिया, शांति देवी बम्बोरिया, अमरचंद शिवरान **और** भोलाराम कुड़ी

11 उपचार
भेड़ों में खुरपका रोग की रोकथाम
ब्रूस बरेटो, रिंकु शर्मा, गोरख मल, अजेयता रियालच **और** राजवीर सिंह पवैया

14 अत्याधुनिक
कृषि में सुदूर संवेदन प्रणाली का अनुप्रयोग
अचिन कुमार **और** राजीव पदभूषण

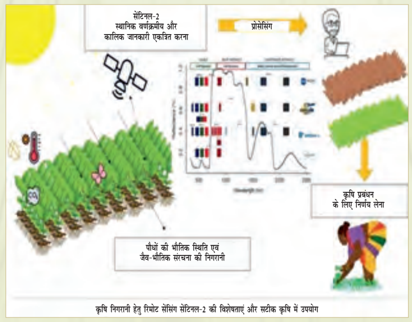

17 सफलता गाथा
वैज्ञानिक मत्स्यपालन से समृद्धि
एच.के. डे, एस.एस. रथ, सी.के. मिश्रा, एस.एन. सेठी, यू.एल. मोहंती, एस.के. बेहेरा **और** एस. सौरभ

19 जांच
दूध में मिलावट की पहचान
राजेश कुमार **और** अविनाश चौहान

विषय-सूची

21 आधुनिक

भूजल संभावित क्षेत्रों की पहचान में उपयोगी जियोइन्फॉर्मेटिक्स तकनीक

दीपक पटले **और** मनोज कुमार अवस्थी

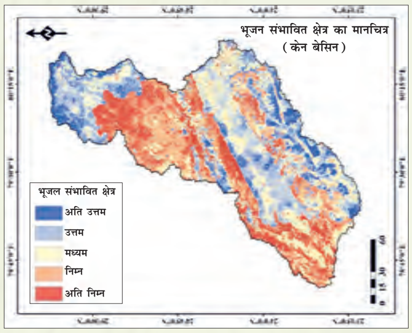

23 उपयोगी

ट्राइकोडर्मा विरिडी से फसलों में रोग प्रबंधन

राधिका शर्मा **और** जगमोहन सिंह ढिल्लों

26 प्रबंधन

फसलों का लू से बचाव

अनन्ता वशिष्ठ, मोनिका कुंडू, पी. कृष्णन **और** सुभाष नटराज पिल्लई

29 कृषि कैलेण्डर

जून के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, अंजली पटेल, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय **और** एस.एस. राठौर

विश्व पर्यावरण दिवस-2025

आवरण II

कृषि पर प्लास्टिक प्रदूषण का प्रभाव

सामयिक

आवरण III

कृषि खबरें, देश-विदेश की

निदेशक की कलम से

वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों का कृषि पर प्रभाव

आज का युग तीव्र औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन का है, जिसके कारण पर्यावरणीय चुनौतियां तेजी से बढ़ रही हैं। जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापमान में वृद्धि, जल और वायु प्रदूषण, जैव विविधता में गिरावट और प्राकृतिक आपदाओं की तीव्रता ने मानव जीवन तथा कृषि दोनों को गंभीर संकट में डाल दिया है।

मानव जीवन पर इसका प्रभाव कई रूपों में सामने आ रहा है-असामयिक बाढ़, सूखा, लू, तूफान, रोगों में वृद्धि और जीवन की गुणवत्ता में कमी देखी जा रही है। इसके साथ ही स्वास्थ्य समस्याएं जैसे-दमा, कैंसर, हृदय रोग और जलजनित रोगों में भी तेजी से वृद्धि हो रही है। बढ़ते तापमान और प्रदूषित वायु का सीधा असर बच्चों और बुजुर्गों की सेहत पर विशेष रूप से पड़ रहा है।

कृषि क्षेत्र भी इन पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रभाव से अछूता नहीं है। बेमौसम वर्षा, लू, आंधी और सूखे जैसे हालात फसलों की उत्पादकता पर गहरा प्रभाव डालते हैं। मृदा की उर्वराशक्ति में कमी, जलस्तर का निरंतर घटता स्तर, फसलों में कीट एवं रोगों का बढ़ना, किसानों के लिए नई चुनौतियां उत्पन्न कर रहा है। खासकर भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहां 60 प्रतिशत से अधिक आबादी आज भी कृषि पर निर्भर है, वहां यह स्थिति चिंता का विषय है।

भारत में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पहले से ही स्पष्ट है-उत्तराखंड की बाढ़, महाराष्ट्र का सूखा, पंजाब में भूमिगत जल की कमी और असोम में भूस्खलन इसके उदाहरण हैं। फसलों की पारंपरिक पद्धतियां अब टिकाऊ नहीं रहीं। इन पद्धतियों से खेती में लागत बढ़ रही है और लाभ घटता जा रहा है।

इसका समाधान सामूहिक प्रयासों से ही संभव है। पर्यावरण संरक्षण की दिशा में निम्न कुछ प्रमुख कदम लिए जा सकते हैं:

- संवहनीय खेती को बढ़ावा देना जैसे जैविक कृषि, बहुफसली प्रणाली और जल-संरक्षण।
- पुनः वनरोपण और वृक्षारोपण को प्राथमिकता देना।
- नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों (सौर, पवन) का अधिकतम उपयोग करना।
- जल संरक्षण तकनीकों जैसे ड्रिप सिंचाई, वर्षा जल संचयन को अपनाना।
- शहरी क्षेत्रों में हरित क्षेत्रों को बढ़ाना।

भविष्य की दृष्टि से यदि पर्यावरणीय संतुलन की ओर ठोस कदम नहीं उठाते, तो आने वाली पीढ़ियां अत्यधिक गर्मी, जल संकट और खाद्य असुरक्षा का सामना करेंगी। जलवायु परिवर्तन केवल वैज्ञानिकों या सरकार की चिंता का विषय नहीं, बल्कि यह हर नागरिक की जिम्मेदारी है।

पर्यावरणीय संकट एक वैश्विक चुनौती है, लेकिन समाधान भी हमारे ही हाथ में है। अगर आज जागरूक होकर प्रकृति के साथ सामंजस्य से चलना शुरू करें, तो एक सुरक्षित और समृद्ध भविष्य संभव है।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

सतत कृषि हेतु उन्नत उपकरण

शालिनी चतुर्वेदी, अतुल कुमार श्रीवास्तव और **इंद्रवीर सिंह**

"सतत कृषि वह तरीका है, जिसमें पर्यावरण, समाज और अर्थव्यवस्था का संतुलन बनाए रखते हुए कृषि उत्पादन को बढ़ाया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, खाद्य सुरक्षा में वृद्धि और किसानों की आय में सुधार करना है। इसके लिए आधुनिक उपकरण और तकनीकें महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इन तकनीकों का उपयोग करके कृषि को अधिक उत्पादक, कुशल और पर्यावरण के अनुकूल बनाया जा सकता है। इस लेख में उन उपकरणों और तकनीकों पर चर्चा करेंगे, जो सतत कृषि को बढ़ावा देने में सहायक हैं।"

सतत कृषि की दिशा में तकनीकी प्रगति ने पर्यावरण और किसानों दोनों के लिए लाभकारी परिणाम दिए हैं। कृषि उपकरणों और तकनीकों का उपयोग करने से न केवल कृषि के प्रभाव को कम किया जा सकता है, बल्कि खाद्य सुरक्षा को भी बढ़ावा दिया जा सकता है। इनके माध्यम से किसान अब अधिक उचित निर्णय ले सकते हैं। इसके साथ ही संसाधनों का कुशल उपयोग कर सकते हैं और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी कर सकते हैं। उन्नत उपकरणों, प्रौद्योगिकियों एवं तकनीकों का प्रयोग कृषि क्षेत्र को पर्यावरण के अनुकूल, आर्थिक रूप से लाभकारी और अधिक उत्पादक बनाने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

ड्रोन और सेंसर्स

ड्रोन और सेंसर्स अब कृषि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ड्रोन का उपयोग भूमि का निरीक्षण करने, फसलों की स्थिति की जांच करने, पानी की आवश्यकता का मूल्यांकन करने और उर्वरकों का वितरण करने के लिए किया जाता है। इसके साथ ही सेंसर्स का इस्तेमाल मृदा की नमी, तापमान और पोषक तत्वों की मात्रा को मापने के लिए किया जाता है।

यह तकनीक किसानों को अधिक सटीक जानकारी प्रदान करती है, जिससे वे अपनी फसल की निगरानी कर सकते हैं और आवश्यकतानुसार जलवायु एवं खाद्यान्न पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं।

जैविक उर्वरक और कीट नियंत्रक

सतत कृषि में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग को कम करने की आवश्यकता है। जैविक उर्वरक और कीट नियंत्रक इसका समाधान संस्तुत करते हैं। जैविक उर्वरकों में गोबर की खाद, कम्पोस्ट और अन्य प्राकृतिक उर्वरक शामिल हैं, जो मृदा की गुणवत्ता को सुधारते हैं और पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं।

जैविक कीटनाशक जैसे-नीम का तेल, और जैव-कीटनाशक फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों से बचाने में मदद करते हैं, जबकि रासायनिक कीटनाशकों की तुलना में ये पर्यावरण के लिए सुरक्षित होते हैं।

टिलेजलेस फार्मिंग

टिलेजलेस यह एक ऐसी तकनीक है, जिसमें मिट्टी को पलटने की आवश्यकता नहीं होती। यह विधि मिट्टी के कटाव को रोकती है और कार्बन उत्सर्जन को कम करती है। इसमें केवल सतह को हल्का सा जोता जाता है, जिससे मृदा की संरचना और उसके पोषक तत्वों को सुरक्षित रखा जाता है।

इस तकनीक का उपयोग किसानों को कम ऊर्जा खर्च करने, समय बचाने और मृदा की गुणवत्ता को बनाए रखने में मदद करता है।

एग्री-रोबोट्स

ये कृषि में विभिन्न कार्यों को स्वचालित तरीके से करते हैं। इनमें फसल की रोपाई, निराई और कीटनाशक का छिड़काव शामिल है। ये रोबोट किसानों के काम को अधिक प्रभावी और समय बचाने वाला बनाते हैं। इसके अलावा, ये मशीनें सही स्थान पर उर्वरक और कीटनाशक का छिड़काव करती हैं, जिससे पर्यावरणीय प्रभाव कम होता है।

कृषि तकनीकें

सटीक कृषि तकनीक

सटीक कृषि में आधुनिक तकनीकों जैसे ड्रोन, सेंसर और जीपीएस का उपयोग होता है। ये उपकरण किसानों को उनकी फसलों की सटीक जानकारी प्रदान करते हैं, जैसे कि मृदा में पोषक तत्वों की मात्रा, नमी का स्तर, और कीटों की मौजूदगी आदि।

- **ड्रोन:** इन्हें हवाई सर्वेक्षण के लिए उपयोग किया जाता है। ये फसलों की सेहत की निगरानी करते हैं और कीटनाशकों का छिड़काव भी कर सकते हैं।
- **सेंसर:** मृदा और पौधों पर लगे सेंसर पानी, तापमान और पोषक तत्वों की आवश्यकता को मापते हैं।
- **जीपीएस-आधारित ट्रैक्टर:** ये ट्रैक्टर बीज बोने और उर्वरक छिड़कने में सटीकता सुनिश्चित करते हैं, जिससे संसाधनों का क्षरण कम होता है।

जल संरक्षण उपकरण

पानी की कमी आज एक बड़ी चुनौती है। सतत कृषि में जल संरक्षण के लिए कई उपकरण विकसित किए गए हैं:

- **ड्रिप सिंचाई प्रणाली:** यह तकनीक पानी को सीधे पौधों की जड़ों तक पहुंचाती है, जिससे पानी की बर्बादी 50 प्रतिशत तक कम हो जाती है।
- **रेनवाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम:** वर्षा जल को संग्रहित करने के लिए टैंक और तालाब बनाए जाते हैं, जो सूखे के समय उपयोगी होते हैं।
- **स्मार्ट इरिगेशन कंट्रोलर:** ये उपकरण मौसम के पूर्वानुमान और मृदा की नमी के आधार पर स्वचालित रूप से सिंचाई को नियंत्रित करते हैं।

स्मार्ट सिंचाई प्रणाली

जलवायु परिवर्तन और पानी की कमी के कारण पानी की सही मात्रा का प्रबंधन बेहद जरूरी हो गया है। स्मार्ट सिंचाई प्रणाली में जल की बर्बादी को कम करने और फसलों को सही मात्रा में पानी देने के लिए उन्नत तकनीक का उपयोग करते हैं। यह प्रणाली सेंसरों और डेटा एनालिटिक्स का उपयोग करती है। इससे पानी की सही मात्रा का निर्धारण किया जाता है और फसलों को बिना अधिक पानी दिए उनकी पानी की जरूरत पूरी की जाती है। यह तकनीक जल के उपयोग को 30-50 प्रतिशत तक कम कर सकती है और कृषि क्षेत्र में जल संकट को कम करने में मदद करती है।

सौर ऊर्जा

सौर ऊर्जा का उपयोग कृषि में ऊर्जा के सस्ते और पर्यावरण मित्र स्रोत के रूप में किया जा रहा है। सौर पैनलों का उपयोग जल पंपिंग, सिंचाई प्रणाली और अन्य कृषि उपकरणों को ऊर्जा देने के लिए किया जाता है। यह तकनीक न केवल ऊर्जा की लागत को कम करती है, बल्कि किसानों को अपनी ऊर्जा आपूर्ति के लिए बाहरी स्रोतों पर निर्भर नहीं होने देती।

दलहनी फसलों में खरपतवार प्रबंधन

सुमित्रा देवी बम्बोरिया[1], **शांति देवी बम्बोरिया**[2], **अमरचंद शिवरान**[3] और **भोलाराम कुड़ी**[4]

"खरीफ दलहनी फसलों की खेती मुख्यत: असिंचित क्षेत्रों में की जाती है, जहां पर नमी एवं पोषक तत्वों की कमी होती है। किसान दलहनी फसलों की खेती से उन्नत किस्मों एवं पोषक तत्व, कीट-व्याधियों तथा खरपतवार प्रबंधन की तकनीक की जानकारी का अभाव होने के कारण अच्छी उपज प्राप्त नहीं कर पाते हैं। खरपतवार, कीट एवं रोग आदि के कारण उपज काफी प्रभावित होती है। कृषि उत्पादों की कुल वार्षिक हानि में खरपतवारों द्वारा लगभग 45 प्रतिशत, कीटों द्वारा 30 प्रतिशत, पादप रोगों द्वारा 20 प्रतिशत तथा अन्य कारकों द्वारा 5 प्रतिशत क्षति होती है। असिंचित क्षेत्रों में, खरपतवार दलहनी फसलों से तीव्र प्रतिस्पर्धा करके भूमि में निहित नमी एवं पोषक तत्वों के अधिकांश भाग को शोषित कर लेते हैं। इसके साथ ही साथ फसल को आवश्यक प्रकाश एवं स्थान से भी वंचित रखते हैं। फलस्वरूप फसल की विकास गति धीमी पड़ जाती है तथा पैदावार कम हो जाती है। खरीफ मौसम में उच्च तापमान एवं अधिक नमी के कारण रबी मौसम की अपेक्षा अधिक खरपतवार उगते हैं। इनका समय पर नियंत्रण नहीं होने से पौधों की बढ़वार काफी कम हो जाती है। इससे उपज पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त खरपतवार फसलों में लगने वाले रोगों के जीवाणुओं एवं कीट व्याधियों को भी आश्रय देते हैं। इसके अलावा कुछ विषैले खरपतवार जैसे गाजर घास, धतुरा, गोखरू, कांटेदार चौलाई आदि न केवल फार्म उत्पाद की गुणवत्ता को घटाते हैं बल्कि मनुष्य और पशुओं के स्वास्थ्य के प्रति संकट उत्पन्न करते हैं।"

दलहनी फसलों में उपज कम होने का एक मुख्य कारण खरपतवारों की वृद्धि और समय से उनका नियंत्रण नहीं करना है। कम ऊंचाई एवं जल्दी पकने वाली किस्मों में खरपतवार की समस्या और बढ़ जाती है। इनमें खरपतवारों की समय पर रोकथाम से न केवल पैदावार बढ़ाई जा सकती है, अपितु उसमें गुणवत्ता को भी बढ़ाया जा सकता है।

[1]सहायक आचार्य, [3]आचार्य, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान); [2]कृषि शोध वैज्ञानिक, भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब); [4]कृषि विज्ञान केंद्र, पाली, भाकृअनुप-काजरी, जोधपुर (राजस्थान)

खरीफ दलहनी फसलों के प्रमुख खरपतवार

खरीफ फसलों में उत्पादकता सीमित होने का एक प्रमुख जैविक कारण खरपतवारों की समस्या का होना है। रबी मौसम की फसलों की तुलना में खरपतवारों के प्रकोप से अधिक क्षति होती है। खरपतवारों द्वारा फसल में होने वाली क्षति की सीमा, फसल, जलवायु, मौसम, मृदा, सिंचाई तथा खरपतवारों के प्रकार तथा उनकी संख्या पर निर्भर करती है। अत: सभी फसलों में खरपतवारों की उपस्थिति के कारण समान क्षति नहीं होती। खरीफ दलहनी फसलों में विभिन्न प्रकार के खरपतवार पाये जाते हैं, जैसे संकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले और मोथाकुल परिवार के खरपतवार।

दलहनी फसलों में खरपतवार की

समस्या अधिक पायी जाती है। खरपतवार नमी, तापमान, हवा एवं पोषक तत्वों आदि के लिए फसल से प्रतिस्पर्धा करते हैं। इससे 15 से 50 प्रतिशत तक पैदावार में कमी आ जाती है। फसल के प्रारम्भिक 15-45 दिनों में खरपतवार नियंत्रण बहुत आवश्यक होता है। खरीफ फसलों में सामान्यत: खरपतवार फसलों को प्राप्त होने वाली 47 प्रतिशत फॉस्फोरस, 50 प्रतिशत पोटाश, 39 प्रतिशत कैल्शियम और 34 प्रतिशत मैग्नीशियम तक का उपयोग कर लेते हैं।

खरपतवार प्रबंधन

फसल की प्रारंभिक अवस्था में बुआई के 15 से 45 दिनों के मध्य फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना जरूरी है। खरपतवार नियंत्रण की कोई भी विधि किसी निश्चित स्थान पर दक्षता के वांछित स्तर तक नहीं पहुंच सकती है। अत: खेत में खरपतवारों के प्रभाव को कम करने के लिए एक से अधिक तरीकों को अपनाना आवश्यक है। इनमें बचावकारी क्रियाएं, कृषि क्रियाएं, यान्त्रिक क्रियाएं, जैविक क्रियाएं एवं रासायनिक क्रियाएं आदि का प्रयोग इस तरह करें कि भूमि की उत्पादकता एवं उर्वरता प्रभावित न हो तथा मानव सहित अन्य किसी भी जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों एवं वांछित पेड़-पौधों को किसी भी प्रकार का नुकसान न हो और साथ ही पर्यावरण भी सुरक्षित रहे।

फसल वृद्धि हेतु खरपतवार प्रबंधन जरूरी

जैविक खेती में उत्पादन हानि को कम करने एवं खरपतवारों द्वारा होने वाले अन्य दुष्प्रभावों को रोकने के लिए निम्न विधियां जो आईडब्ल्यूयूएम में समयानुसार एवं क्रमानुसार अपनाई जाती हैं:

- बचावकारी उपाय
- कृषिगत या सस्य विधियां
- यांत्रिक विधियां
- जैविक विधियां
- रासायनिक विधियां

बचावकारी उपाय/निवारण विधि

इसके अन्तर्गत वे सभी विधियां आती हैं, जिनके द्वारा खरपतवार के बीजों को उन स्थानों पर पहुंचने या फैलने से रोका जाता है, जहां वे पहले से मौजूद नहीं हैं। इसके लिए उन सभी परिस्थितियों को जानना आवश्यक है, जिनमें खरपतवार एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचते हैं। खरपतवार के बीजों के फैलाव को रोकने के लिए निम्न उपाय मुख्य रूप से अपनाये जाते हैं:

- बुआई के लिए खरपतवार रहित साफ-सुथरे बीजों का उपयोग करें।
- खेत की मेड़ और सिंचाई नालियों को खरपतवार से मुक्त रखें।
- फसल कटाई के समय फसल के बीज के साथ खरपतवार के बीज को जाने से रोकें।
- जिस खेत में खरपतवार का प्रकोप हो, उसकी मृदा दूसरे खेत में न डालें।
- कृषि कार्य में उपयोग होने वाले सभी उपकरण और मशीनों को उपयोग में लाने से पहले तथा उपयोग के बाद साफ कर लें।
- खेत के चारों ओर ऐसी हेज कतारें लगायें जो हवा द्वारा वितरित होने वाले खरपतवार के बीजों को खेत में आने से रोक सकें।
- पशुओं को खरपतवार के बीजों से मुक्त चारा खिलाएं तथा पशुओं को खरपतवार वाले क्षेत्र से होकर बिना खरपतवार वाले क्षेत्र में न जाने दें।

सस्य विधियां

कृषिगत विधियों द्वारा फसल के पौधों को स्वस्थ एवं रोगमुक्त रखा जाता है जिससे फसलों के पौधे खरपतवारों से अच्छी तरह से संघर्ष करके उनकी वृद्धि एवं विकास को रोक सकें। प्रमुख कृषिगत विधियां निम्न हैं:

फसलचक्र

फसलचक्र लम्बे समय के लिए खरपतवार नियंत्रण के लिए महत्वपूर्ण होता है। किसी खेत में एक ही प्रकार की फसल को उगाते रहने से उस फसल में होने वाले खरपतवारों का दबाव उसमें बढ़ जाता है। उनकी उगने तथा वृद्धि की दशाएं अनुकूल होती हैं। फसलचक्र में परिवर्तन करके फसल को उगाने से इन खरपतवारों की अंकुरण क्षमता एवं वृद्धि भिन्न फसल के लिए उपयोग की जाने वाली कर्षण क्रियाओं (भूपरिष्करण, बुआई का समय, फसल प्रतियोगिता आदि) के कारण नष्ट हो जाती है और इनका नियंत्रण हो जाता है।

किस्म का चयन

खरपतवार नियंत्रण हेतु ऐसी फसल किस्म का चयन करना चाहिए, जो शीघ्र उगने वाली हो एवं अधिक क्षेत्र घेरती हो। ऐसी फसल किस्में खरपतवार की वृद्धि को दबा देती हैं। शीघ्र वृद्धि करने वाली फसलों में खरपतवारों से प्रतियोगिता करने की क्षमता अधिक होती है।

बुआई का समय

बुआई के समय में परिवर्तन करके खरपतवारों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। किसी खरपतवार विशेष को नष्ट करने के लिए फसल बुआई के 10-15 दिनों पूर्व पलेवा करने से खरपतवार उग आते हैं। इन उगे हुए खरपतवारों को जुताई द्वारा नष्ट करने के बाद फसल की बुआई करना लाभकारी होता है।

- यह सुनिश्चित करें कि गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट खाद का उपयोग पूर्ण अपघटन के बाद ही किया जाए, जिससे कि गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट खाद में उपस्थित खरपतवार के बीजों की अंकुरण शक्ति समाप्त हो जाये।
- खेत में उपलब्ध सिंचाई एवं जल निकास नालियों में भारी मात्रा में खरपतवार पनपते रहते हैं और यहां से इनका फैलाव खेतों तक होता है। अतः सिंचाई एवं जल निकास नालियों का क्षेत्रफल कम करके खरपतवारों की संख्या एवं इनके दबाव में कमी लाई जा सकती है।

बीज दर एवं पंक्तियों की दूरी

बीज दर अधिक रखने से पौधों की संख्या बढ़ जाती है। बढ़ी हुई पौध संख्या से भूमि में फसल अधिक सायेदार हो जायेगी, जो बाद में उगने वाले खरपतवारों को पनपने नहीं देती है। फसल के वानस्पतिक आच्छादन से खरपतवारों के पौधों को पर्याप्त मात्रा में प्रकाश उपलब्ध नहीं हो पाता है। देर से बोयी जाने वाली फसलों में खरपतवारों के नियंत्रण की यह बहुत अच्छी विधि है। बीज दर फसल एवं किस्म पर निर्भर करती है। पंक्तियों की दूरी जितनी कम होगी उतनी ही फसल भूमि में सायेदार होगी, जिसके कारण सूर्य का प्रकाश भूमि पर नहीं पहुंचेगा और नए खरपतवारों को पर्याप्त मात्रा में प्रकाश नहीं मिलने के कारण वे पनप नहीं पाएंगे।

स्वस्थ फसल

यांत्रिक विधियां

खरपतवार नियंत्रण की यह एक सरल एवं प्रभावी विधि है। इस विधि में खरपतवारों का नियंत्रण हाथ से, हस्तचालित यंत्रों व जल आदि द्वारा किया जाता है। यांत्रिक विधि द्वारा खरपतवार नियंत्रण हेतु नये विकसित किये गये उन्नत कृषि यंत्रों जैसे कोनोवीडर, व्हील-हो, मोटरचालित वीडर, आदि का उपयोग भी किया जा सकता है। यांत्रिक विधियां निम्न प्रकार से हैं:

भूपरिष्करण

भूपरिष्करण या मिट्टी पलट जुताई विधि से खरपतवार के बीज मृदा गहराई पर समान रूप से वितरित हो जाते हैं। इससे ऊपरी सतह पर खरपतवारों का दबाव कम हो जाता है। ग्रीष्म ऋतु में गहरी जुताई से खेत में उपस्थित खरपतवार एवं उनके बीज भूमि की ऊपरी सतह पर आ जाते हैं एवं अधिक तापमान होने के कारण सूखकर निष्क्रिय हो जाते हैं। लगातार 5-7 वर्षों तक इस तकनीक को अपनाकर खेतों से खरपतवारों के प्रकोप को बहुत हद तक सीमित किया जा सकता है।

खरपतवारों को हाथ से उखाड़ना

फसल बुआई के 20-25 दिनों बाद जब खरपतवारों को हाथ से पकड़ा जा सके तब उखाड़कर इनका उपयोग आच्छादन के रूप में किया जाना चाहिए या उसे उखाड़कर फसल क्षेत्र से दूर मिट्टी में गहराई में दबा दें। यह विधि छोटे क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती है। सिंचित क्षेत्रों में पहली सिंचाई के बाद हाथ से खरपतवार उखाड़ना बहुत उपयोगी रहता है।

हस्तचालित यंत्रों से निराई-गुड़ाई

जैविक विधि से खरपतवार नियंत्रण के लिए निराई-गुड़ाई सबसे अच्छा तरीका है। इसमें खुरपी, पैडी वीडर, कोनोवीडर आदि यंत्रों द्वारा खरपतवारों पर नियंत्रण किया जाता है। इस विधि का प्रयोग करने के लिए फसलों की बुआई पंक्तियों में की जानी चाहिए। निराई-गुड़ाई का सबसे सही समय फसल की बुआई या रोपाई के 3-4 सप्ताह बाद है। सिंचित क्षेत्रों में फसल बुआई के 20-25 दिनों बाद या पहली सिंचाई के बाद प्रथम निराई-गुड़ाई व आवश्यकता पड़ने पर 10-15 दिनों बाद दूसरी निराई-गुड़ाई कर देनी चाहिए। यह खरपतवारों का वृद्धि काल होता है। इस अवस्था में निराई करने से फसल की वृद्धि अच्छी हो जाती है और बाद में उगने वाले खरपतवारों को यह पनपने नहीं देती है। गहरी जड़ वाले खरपतवारों के ऊपरी भाग को बार-बार काटने से इनका प्रस्फुटन बंद हो जाता है और ये पूर्ण रूप से समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार एकवर्षीय खरपतवारों को उनमें बीज बनने या फूल आने से पहले निकाल देने से इन पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

सजीव आच्छादन फसलें

ऐसी फसलें जिनका विकास तेजी से होता है एवं भूमि की सतह को सघनता से आच्छादित कर लेती हैं तथा खरपतवारों की वृद्धि को दबा देती हैं। इससे खरपतवारों को पनपने का मौका नहीं मिल पाता है, उन्हें सजीव आच्छादन फसलें कहते हैं तथा इस विधि को सजीव आच्छादन कहते हैं। जैसे-लोबिया, उड़द आदि आच्छादन फसलों का उपयोग खरपतवारों के नियंत्रण के लिए किया जा सकता है।

प्रतिस्पर्धी फसल उगाना

खरपतवारों से अधिक प्रतिस्पर्धा करने वाली फसलें जैसे-लोबिया, उड़द आदि उगाने से खरपतवारों को अच्छी तरह से नियंत्रित किया जा सकता है। प्रतिस्पर्धी फसल में निम्न विशेषताएं होनी चाहिए:

- ऐसी फसल, जिसका अंकुरण एवं वृद्धि तीव्रता से होती हो।

- कमजोर अथवा कम उपजाऊ भूमि में भी सफलतापूर्वक उग सकती हो तथा मौसम की प्रतिकूल दशाओं से अधिक प्रभावित न होती हो।
- ऐसी फसल जिसकी जड़ें मृदा की ऊपरी तथा निचली दोनों परतों से पोषक तत्वों को अवशोषित करने की क्षमता रखती हों।
- ऐसी फसल, जो रोगरोधी होने के साथ-साथ अल्पकालीन भी हो।

अन्तरवर्ती खेती

इस खेती में मुख्य फसल की दो पंक्तियों के बीच में ऐसी फसल लगा देनी चाहिए, जो खरपतवारों की वृद्धि को दबा देती है। अन्तरवर्ती फसलों के लिए फसल का चयन इस प्रकार करना चाहिए, जिससे खरपतवारों की रोकथाम की जा सके, किन्तु ये मुख्य फसल से पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा न करें। खाद्यान्न फसलों के साथ दलहनी फसलों की अन्तरवर्ती खेती लाभदायक होती है। जैसे-मक्का या ज्वार के साथ सोयाबीन, उड़द या मूंगफली की अन्तरवर्ती खेती खरपतवारों के अंकुरण एवं उनके विकास को रोक देती है तथा मुख्य फसलों को भी प्रभावित नहीं करती है। सामान्यत: अन्तरवर्ती फसल प्रणाली में छोटी अवधि एवं जल्दी उगने वाली फसलें, लम्बी अवधि एवं देर से उगने वाली फसलों की अपेक्षा खरपतवार नियंत्रण हेतु अधिक प्रभावी होती हैं।

अन्तरवर्ती खेती

सारणी 1. खरीफ दलहनी फसलों में उगने वाले प्रमुख खरपतवार

क्र.सं.	खरपतवार का प्रकार	खरपतवार
1.	संकरी पत्ती वाले खरपतवार (घास वर्ग के खरपतवारों की पत्तियां पतली और लंबी होती हैं तथा इन पत्तियों के अंदर समानांतर धारियां पाई जाती हैं। ये एक बीजीय पौधे होते हैं)	सांवा (इकानोक्लोआ कोलोना), दूब घास (साइनोंडान डेक्टीलोन), डेकटाइलोप्टिकम एजीप्टीकम (मकड़ा घास), कोदो/गूज घास (इल्यूसिन इन्डिका), डिजिटेरिया संगुइनेलिस (क्रैब घास), बनरा/फॉक्सटेल (सिटैरिया ग्लाऊका), सेन्चुरुस बाइफ्लोरस (भरूट)
2.	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार (इस प्रकार के खरपतवारों की पत्तियां प्राय: चौड़ी होती हैं तथा ये अधिकतर दो बीज पत्रीय पौधे होते हैं)	पत्थरचट्टा (ट्रायन्थमा पोस्टलाकैस्ट्रम), कनकवा (कामेलिना बेघालेनसिस), अमरंथस स्पीसीज (चौलाई), वन मकोय (फाइजेलिस मिनीमा), हजारदाना (फाइलेन्थस निरुरी), डाईजेरा अरवेंसिस (कुंद्रा), सफेद मुर्गा (सिलोसिया अर्जेन्सिया)
3.	मोथाकुल परिवार के खरपतवार (इस समूह के खरपतवारों की पत्तियां लंबी तथा किनारे वाला भाग ठोस होता है। जड़ों में गाठें पायी जाती हैं)	मोथा (साइपेरस रोटन्ड्स, सा. इरिया आदि)

सारणी 2. दलहनी फसलों में फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रान्तिक समय एवं खरपतवारों द्वारा पैदावार में कमी

दलहनी फसलें	क्रांतिक अवस्था (दिनों में)	खरपतवारों द्वारा पोषक तत्वों का शोषण (कि.ग्रा./हैक्टर)			उपज में कमी (प्रतिशत)
		नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश	
अरहर	15-60	28	24	14	24-40
लोबिया	15-45	29-55	3-8	15-72	30-60
मूंग	15-30	80-132	17-20	80-130	30-50
उड़द	15-30	80-132	17-20	80-130	30-50
मोठ	15-30	29-55	3-8	15-72	30-50

मृदा सौरीकरण

मृदा सौरीकरण खरपतवार नियंत्रण की एक नवीन पद्धति है, जो कीटों एवं खरपतवारों के नियंत्रण के लिये उपयोग में लायी जाती है। इस तकनीक के अंतर्गत विभिन्न मोटाई की पारदर्शी पॉलीथीन शीट (50-100 मि.ली. माइक्रॉन) को समतल नमीयुक्त मृदा की ऊपरी सतह पर फसल की बुआई के पहले मई के में 4-6 सप्ताह तक फैलाकर मृदा की ऊपरी सतह का तापमान बाह्य तापमान की तुलना में 8-12 डिग्री सेल्सियस ज्यादा किया जाता है। यह पद्धति उन क्षेत्रों के लिये विशेष लाभप्रद होती है, जहां ग्रीष्मकाल में तापमान 40-45 डिग्री सेल्सियस होता है।

जैविक आच्छादन या जैविक पलवार

मृदा सतह को ढककर खरपतवार के बीजों को अंकुरित होने तथा वृद्धि करने से रोका जा सकता है। यह प्रकाश संचार एवं वायु संचार को रोक देता है। जैविक आच्छादन के रूप में कम्पोस्ट खाद, भूसा, पुआल, सूखी घास, सूखी पत्तियां, फसल अवशेष इत्यादि का उपयोग किया जा सकता है। इनके द्वारा प्रभावी खरपतवार नियंत्रण होता है। इस पद्धति में खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ मृदा की उर्वराशक्ति भी बढ़ती है।

रासायनिक विधियां

दलहनी फसलों में खरपतवारनाशी रसायनों का प्रयोग करके भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। जहां समय एवं श्रमिक कम तथा पारिश्रमिक ज्यादा हो वहां इस विधि को अपनाने से प्रति हैक्टर लागत कम आती है तथा समय की बचत होती है। इस विधि को अपनाने से श्रम शक्ति भी कम लगती है तथा मुख्य फसल को भी

सारणी 3. दलहनी फसलों में प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशी रसायन

दलहनी फसलें	खरपतवारनाशी	रसायन मात्रा (ग्राम सक्रिय तत्व/है.)	प्रयोग का समय	प्रयोग विधि
मूंग, उड़द, लोबिया, मोठ, अरहर	पेण्डीमेथिलीन (स्टाम्प)	750-1000	बुआई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व	खरपतवारनाशी की आवश्यक मात्रा को 600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से समान रूप से छिड़काव करें
मूंग, उड़द, लोबिया, मोठ, अरहर	इमेजाथाइपर+(परस्यूट)	50-100	बुआई के 18-20 दिन बाद	
मूंग	सोडियम एसीफ्लूरोफेन 24 एस.सी.	1250	बुआई के 25-30 दिन बाद	
मूंग, उड़द, लोबिया	इमेजाथाइपर+इमेजामॉक्स (प्री-मिक्स)	60	बुआई के 18-20 दिन बाद	
मूंग	सोडियम एसीफ्लूरोफेन 16.5 प्रतिशत+ क्लोडिनाफोप प्रोपार्जिल 8 प्रतिशत	187.5	बुआई के 18-20 दिनों बाद	
मूंग	पेण्डीमेथिलीन+इमेजाथाइपर	750	बुआई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व	
मूंग, उड़द, लोबिया, मोठ, अरहर	पेण्डीमेथिलीन तथा इमेजाथाइपर	1250 व 100	बुआई के 0-3 दिन बाद व 20-25 दिनों बाद	

हानि नहीं पहुंचती। मुख्य दलहनी फसलों में उगने वाले खरपतवारों को नष्ट करने हेतु कुछ खरपतवारनाशी रसायनों को उनकी मात्रा के साथ क्रमशः (सारणी-3) वर्णित किया गया है।

फसलों में उपयोग किये जाने वाले रसायनों का प्रयोग मुख्यतः तीन तरीकों से किया जा सकता हैः

- **बोने से पहले भूमि में मिलाकरः** इस प्रकार के शाकनाशी को फसल की बुआई के पहले खेत में अंतिम तैयारी करते समय मिला देना चाहिए तथा यह ध्यान रखना चाहिए कि खेत में पर्याप्त नमी उपलब्ध हो, जैसे-ट्राईफ्लूरेलीन।
- **अंकुरण पूर्व एवं बुआई बाद प्रयुक्तः** इस तरह के शाकनाशी बुआई के बाद किन्तु फसल व खरपतवार के अंकुरण के पहले खेत में छिड़क दिये जाते हैं। जहां तक हो सके इनका प्रयोग फसल बोने के 3 दिनों के भीतर कर देना चाहिए, जैसे-एलाक्लोर, पेण्डीमेथिलीन।
- **अंकुरण बाद छिड़कावः** इस प्रकार के खरपतवारनाशी का प्रयोग बुआई के 30-35 दिनों बाद किया जाता है। जैसे-2,4-डी, क्लोडिनाफॉप, फेनाक्साप्रॉप, क्विजालोफॉप इथाईल, सल्फोसल्फ्यूरॉन इत्यादि।

खरपतवारनाशी रसायनों के प्रयोग में सावधानियां

- रसायनों की जिस फसल के लिए अनुशंसा की गई है, उसी में प्रयोग करें। शाकनाशी रसायनों की उचित मात्रा को उचित समय पर छिड़काव करें।
- छिड़काव के समय खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है।
- शाकनाशियों के डिब्बों पर अंकित निर्देशों के अनुसार ही खरपतवारनाशियों का प्रयोग करें। रसायन को कभी भी देखकर या सूंघकर पहचान न करें प्रत्येक शाकनाशी रसायन हानिकारक होता है।
- छिड़काव यंत्र को छिड़कने से पहले अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिए।
- छिड़काव के लिये हमेशा फ्लैट फैन नोजल का ही प्रयोग करें।
- छिड़काव करते समय दस्ताने, मास्क तथा चश्मे आदि का प्रयोग करना चाहिये, ताकि रसायन शरीर पर न पड़े।
- शाकनाशी का प्रयोग तेज हवा रहने पर अथवा तीव्र धूप के समय भी नहीं करना चाहिए। छिड़काव के समय वायु की दिशा पर भी ध्यान देना चाहिए। वर्षा की आशंका होने पर शाकनाशियों का छिड़काव न करें।
- छिड़काव करने वाले स्प्रेयर की कार्य क्षमता को छिड़काव से पूर्व चैक कर लेना चाहिए। यदि स्प्रेयर के छिद्र बन्द हों, तो उसे मुंह से फूंककर खोलने का प्रयास नहीं करना चाहिए।
- छिड़काव से पूर्व तथा बाद स्प्रेयर को अच्छी प्रकार साफ कर लेना चाहिए तथा जिस स्प्रेयर से शाकनाशी का प्रयोग किया जा रहा है उससे बिना अच्छी प्रकार सफाई किए कीटनाशक या अन्य पदार्थों का छिड़काव नहीं किया जाना चाहिए।
- शाकनाशी की संस्तुत मात्रा का उचित समय पर प्रयोग करना चाहिए। संस्तुत मात्रा से कम मात्रा प्रयोग करने से वांछित खरपतवार-नियंत्रण नहीं होता तथा इससे अधिक मात्रा प्रयोग करने से फसलों पर कुप्रभाव पड़ सकता है जिससे उपज कम होने की सम्भावना रहती है।
- छिड़काव के समय ध्यान देना चाहिए कि शाकनाशी के घोल का खेत में समान वितरण हो।
- मिश्रित फसलों में रसायनों का चयन फसलों के मुताबिक ही करें।
- छिड़काव पूरा हो जाने के बाद खाली डिब्बे को या तो जमीन में दबा दें या जला दें।

हस्तचालित यंत्रों से निराई-गुड़ाई

भेड़ों में खुरपका रोग की रोकथाम

ब्रूस बरेटो[1], **रिंकु शर्मा**[2], **गोरख मल**[3], **अजेयता रियालच**[4], और **राजवीर सिंह पवैया**[5]

भेड़ पालन, कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे दूध, मांस और ऊन जैसे आवश्यक उत्पाद प्राप्त होते हैं। खुरपका, *डाइचेलोबैक्टर नोडोसस* और *फ्यूसोबैक्टीरियम नेक्रोफोरम* के कारण होने वाला एक संक्रामक जीवाणु रोग है, जो मुख्य रूप से भेड़ों को प्रभावित करता है। यह रोग भेड़ों के लिए दर्द, लंगड़ापन और कम गतिशीलता का कारण बनता है। यह रोग भेड़ों की चरने, प्रजनन, ऊन और मांस उत्पादन में योगदान करने की क्षमता को बाधित करता है। उपचार लागत में वृद्धि और उत्पादकता में कमी के कारण इसके गंभीर आर्थिक प्रभाव होते हैं। यह रोग भारत के कई क्षेत्रों में व्यापक रूप से फैला हुआ है, जिनमें जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं दक्षिण भारत शामिल हैं। रोकथाम के उपायों में संगरोध, खुर काटने वाले उपकरणों का परिशोधन और प्रभावित भेड़ों को अलग करना शामिल है। उपचार में पैर धोना, एंटीबायोटिक्स और दर्द निवारक दवाइयां शामिल हैं। वर्तमान में जारी शोध का उद्देश्य इस रोग के बेहतर नियंत्रण के लिए एक प्रभावी टीका विकसित करना है, जिससे समय रहते इसकी रोकथाम की जा सके।

भेड़ पालन कृषि का एक प्रमुख घटक है, जिससे ऊन, मांस और दूध सहित महत्वपूर्ण उत्पादों का उत्पादन होता है। वर्ष 2022 तक दुनिया की भेड़ों की आबादी लगभग 1.2 बिलियन (आईडब्ल्यूटीओ, 2022) होने का अनुमान है, जिसमें भारत में भेड़ों की दुनिया में दूसरी सबसे बड़ी संख्या है।

वर्ष 2018-19 में आयोजित 20वीं पशुधन जनगणना के दौरान, यह अनुमान लगाया गया था कि देश की कुल भेड़ों की आबादी 74.26 मिलियन (वर्ष 2012 की पिछली गणना की तुलना में 14.13 प्रतिशत की वृद्धि) थी, जो भारत की कुल पशुधन आबादी का लगभग 13.8 प्रतिशत है। भेड़ों की चाल में लंगड़ापन, जो मुख्य रूप से पैर के घावों के कारण होता है, दर्द का एक नैदानिक संकेतक है। यह विशेष रूप से स्पष्ट पशु कल्याण मुद्दा है और पशु उत्पादकता को सीमित करता है।

खुरपका एक अत्यधिक संक्रामक जीवाणु रोग है, जो *डाइचेलोबैक्टर नोडोसस* के कारण होता है। यह मुख्य रूप से भेड़ों के पैरों को प्रभावित करता है। यह रोग बकरियों,

[1]एम.वी.एससी. विद्यार्थी; [2]प्रधान वैज्ञानिक; [3]प्रमुख, क्षेत्रीय केंद्र एवं प्रधान वैज्ञानिक; [4]वैज्ञानिक; [5]प्रमुख, पैथोलॉजी डिवीजन एवं प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप-भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, पालमपुर-176061 (हिमाचल प्रदेश)

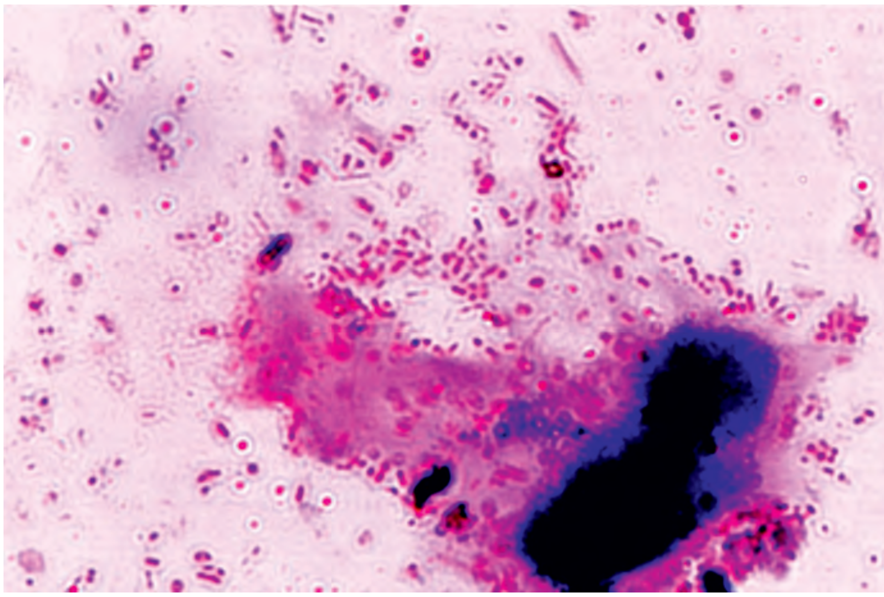

डी. नोडोसस ग्राम. नेगेटिव रॉडनुमा आकार

शूकरों और मवेशियों को भी प्रभावित कर सकता है। यह रोग किसी भी उम्र या लिंग की भेड़ को प्रभावित कर सकता है। हालांकि, डी. नोडोसस अकेले संक्रमण के लक्षणों को पुन: उत्पन्न नहीं कर सकता है। भेड़ों में खुरपका लक्षण *फ्यूसोबैक्टीरियम नेक्रोफोरम (एफ. नेक्रोफोरम)* नामक जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता है। औसतन, संक्रमण से लेकर नैदानिक लक्षणों की शुरुआत तक लगभग दो से तीन सप्ताह लगते हैं। अंतर्निहित एपिडर्मल ऊतक से केराटिनस खुर का अलग होना खुरपका की पहचान है।

खुरपका आर्थिक प्रभाव और पशु कल्याण के दृष्टिकोण से हानिकारक रोग है। खुरपका से ग्रसित भेड़ें अक्सर दर्द, बेचैनी और कम गतिशीलता से ग्रसित होती हैं। यह रोग पोषण के लिए प्रतिस्पर्धा करने की उनकी क्षमता में बाधा डालता है और यहां तक कि भेड़ों को प्रजनन करने से भी रोकता है। इस रोग के प्रकोप में लंगड़ापन और शारीरिक स्थिति में गिरावट, भेड़ के प्रजनन में कमी, दूध उत्पादकता में कमी, ऊन गुणवत्ता में कमी और वध के समय शव का वजन कम होना कुछ प्रत्यक्ष परिणाम हैं। रोग निरोधी फुटबाथ, एंटीबायोटिक्स और दर्द निवारक दवाइयों के खर्च के कारण किसानों पर इसका भारी आर्थिक दबाव पड़ता है।

व्यापकता

भारत में जम्मू और कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश जैसे उत्तर-पश्चिमी हिमालयी राज्यों में खुरपका के व्यापक रूप से मामले सामने आए हैं। आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, केरल और तमिलनाडु जैसे दक्षिण भारतीय राज्यों में भी कई जगह इस रोग के मामले सामने आए हैं। महाराष्ट्र, हरियाणा और राजस्थान में भी छुटपुट प्रकोप की सूचना मिली है।

जीवाणु संबंधी पहलू

डी नोडोसस ग्राम-नेगेटिव, एनारोबिक, रॉड के आकार का होता है, और इसके प्रत्येक सिरे पर विशिष्ट घुंडियां होती हैं। यह अक्सर बड़े पैमाने पर फ़िम्ब्रिएटेड होता है।

डी. नोडोसस का टाइप IV फिम्ब्रियल सबयूनिट जीन विषाणुता, ऊष्मा-स्थिर प्रोटिएज के उत्पादन और प्राकृतिक क्षमता के लिए आवश्यक है। कम से कम तीन सबटिलिसिन जैसे बाह्य कोशिकीय सेरीन प्रोटिएज और *डी नोडोसस* उपभेदों द्वारा उत्पादित होते हैं। इन का विषाणु खुरपका से एक प्रमुख संबंध है। टाइप IV फिम्ब्रिया ट्टचिंग गतिशीलता के लिए जिम्मेदार हैं जो रोगजनकता के लिए आवश्यक है।

ऑस्ट्रेलियाई वर्गीकरण प्रणाली का उपयोग आइसोलेट्स को दस सीरोग्रुपों में समूहीकृत करने के लिए किया जाता है, जिन्हें । से I और M नामित किया जाता है। इन 10 सीरोग्रुपों को 21 सीरोटाइप में विभाजित किया गया है, जिनके नाम हैं: A1, A2, B2, B3, B4, B5, B6, C1, C2, E1, E2, F1, F2, G1, G2, H1, H2, 1 और M ।

रोग कारक

खुरपका रोग संक्रमण के तीन कारक प्रमुख हैं: रोगजनक, मेजबान और पर्यावरण।

रोकथाम

- स्वस्थ झुंड में रोग के प्रवेश को रोकने के लिए नए पशुओं को संगरोधित करें।
- खुर काटने वाले उपकरण को प्रत्येक पैर के बाद और पशुओं के बीच कीटाणुरहित किया जाना चाहिए।
- ब्लेड को 60 प्रतिशत इथेनॉल के घोल में डूबे हुए कीटाणुनाशक तौलिये से पोंछें। साथ ही 4 प्रतिशत फॉर्मेल्डिहाइड घोल में अतिरिक्त स्नान और कीटाणुनाशक तौलिये से दूसरी बार सफाई करने से डी. नोडोसस बैक्टीरिया में अधिक कमी आती है।
- प्रत्येक पशु को संभालने के बाद श्रमिकों को दस्ताने बदलने/कीटाणुरहित करने चाहिए।
- सभी खुरों की कतरनों को झुंड की पहुंच से बाहर एक जगह पर इकट्ठा करके फेंकना चाहिए।
- हमेशा रोगी भेड़ों को अलग रखें और उनका उपचार करें या उन्हें नष्ट कर दें।

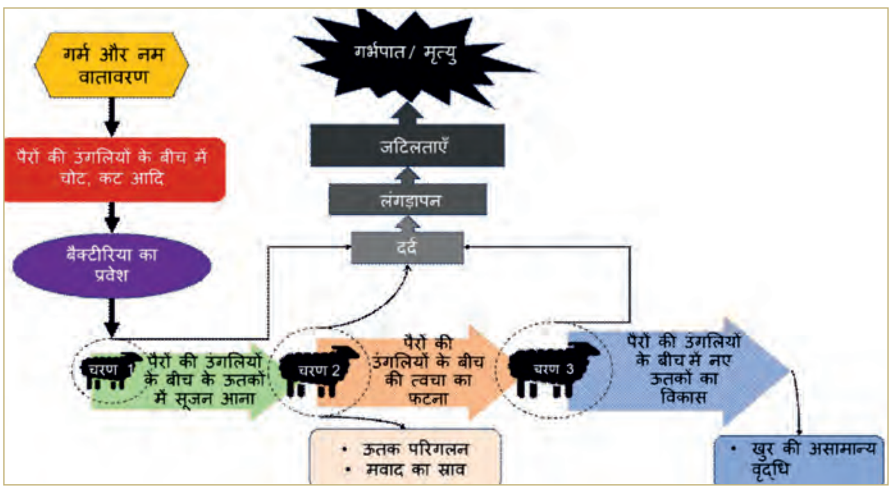

फुटरॉट का रोगजनन

इनमें से किसी भी चर में परिवर्तन से खुरपका प्रभावित हो सकता है। *डी नोडोसस* के संक्रमित स्ट्रेन की विषाणुता खुरपका की गंभीरता का प्राथमिक निर्धारक है। हालांकि, संक्रमण के क्षेत्र में अतिरिक्त सह-संक्रमित बैक्टीरिया की उपस्थिति के साथ सूजन भी भिन्न हो सकती है। पर्यावरणीय कारक जैसे कि लंबे समय तक नम वातावरण में रहना, कीचड़ भरे चरागाह, अस्वच्छ पशु शेड, बार-बार बारिश और पैर की चोटें पशुओं में संक्रमण करती हैं। अन्य कारकों में संगठित भेड़ फार्म में नियमित रूप से अत्यधिक खुर काटना, खुर काटने वाले उपकरणों को साफ और कीटाणुरहित न करना शामिल है।

संक्रमण

खुरपका मुख्य रूप से रोगी भेड़ों के संपर्क या पर्यावरण प्रदूषण से झुंडों के बीच फैलता है। *डी. नोडोसस* जीवाणु अधिकतम 24 दिनों तक नम मृदा में जीवित रह सकता है। अनुकूलतम परिस्थितियों (गर्म और नम) में चरागाह और शेड दोनों ही सात से दस दिनों तक दूषित रह सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप झुंड के भीतर इस रोग के संचार होने की आशंका बनी रहती है। झुंड के भीतर रोग संचरण खुर काटने वाली कैंची के माध्यम से हो सकता है। जंगली खुर वाले पशु या संक्रमित बकरी, मवेशी और शूकर जैसे पालतू पशु संक्रमण के स्रोत के रूप में कार्य कर सकते हैं।

रोगजनक

शारीरिक क्षति, जैसे नमी के लंबे समय तक संपर्क में रहने से पैर पानी से भर जाता है, जिससे यह स्थिति शुरू होती है। यह पैर को एफ. नेक्रोफोरम (आमतौर पर मल से दूषित मृदा में पाया जाता है) जीवाणु के आक्रमण के कारण होने वाले इंटरडिजिटल डर्मेटाइटिस के प्रति संवेदनशील बनाता है। *डी. नोडोसस* संक्रमण के बाद खुरपका विकसित हो सकता है। फिम्ब्रिया शुरू में मेजबान कोशिकाओं और *डी. नोडोसस* के बीच घनिष्ठ संपर्क को प्रोत्साहित करता है।

जीवाणु के बाद के स्थानांतरण (गतिशीलता को हिलाकर) एक अधिक अवायवीय सूक्ष्म वातावरण में बैक्टीरिया के विकास और बाह्य कोशिकीय प्रोटिएज संश्लेषण के लिए आवश्यक है। यह अंततः घाव के गठन की ओर ले जाता है। आक्रामक, विषैला *डी. नोडोसस* कोलेजन पर फीड करते समय जीवित एपिडर्मिस को नष्ट कर देता है। यह संवेदनशील डर्मिस और एपिडर्मल हॉर्न के बीच ग्रे पेस्टी मैल के संचय जैसे नैदानिक लक्षणों के विकास के साथ-साथ एक दुर्गंध उत्पन्न करता है। खुर के अलग होने जैसे घाव खुर के मैट्रिक्स में सूजन और परिवर्तन के कारण होते हैं। खुरपका मेजबान द्वारा मध्यस्थता की गई स्थानीय प्रतिरक्षा प्रतिक्रियाओं की अधिक अभिव्यक्ति के कारण होता है। यह पैर में तीव्र सूजन का कारण बनता है और अंततः खुर को अंतर्निहित डर्मिस से अलग कर सकता है।

लक्षण

- बुखार, भूख में कमी, वजन कम होना।
- असहनीय बेचैनी, लंगड़ापन और घुटनों के बल झुककर चलना/खाना।
- प्रभावित भेड़ तीन पैरों पर खड़ी होती है।

घाव

खुर के एपिडर्मल ऊतकों का एक एक्सयूडेटिव संक्रमण और उसके बाद गल जाना देखा जाता है। इसके साथ अक्सर एक गंध भी स्रावित होती है। भेड़ के पैरों की उंगलियों के बीच त्वचा में सूजन आ जाती है, गंभीर परिस्थितियों में पंजे का कैप्सूल नीचे की नरम डर्मिस से पूरी तरह से अलग हो जाता है। सौम्य खुरपका में हल्की सूजन और बालों का झड़ना देखा जा सकता है। पैर की उंगलियों के बीच की जगह नम हो जाती है। अधिक गंभीर मामलों में त्वचा में व्यापक सूजन देखी जाती है। पैर की उंगलियों के बीच की जगह में खुर को नुकसान होता है। खुरपका अक्षीय भाग का अलग होना, खुर का तलवे की ओर घिसना भी होता है। कटाव (विभाजन सहित) बाहरी खुर तक फैल जाता है (केंद्र से दूर), पोडोडर्म गंभीर रूप से प्रभावित होता है खुर कैप्सूल हट (पूर्ण पृथक्करण) जाता है।

परिणाम

खुरों में दरारें और खराब होने जैसी स्थानीय असामान्यताएं दिखाई दे सकती हैं, या वे विकृत हो सकते हैं। संक्रमण चक्र को जारी रखने की उनकी क्षमता के कारण, रोगी पशु वाहक बने रह सकते हैं और झुंड के लिए एक गंभीर संकट बन सकते हैं। इसी तरह बैक्टीरिया खुरों में पड़ी दरारें पाई जाती हैं, जिन्हें खोजना मुश्किल है। लगातार संक्रमित

पैर की उंगलियों के बीच की जगह में संक्रमण

वाहक पशुओं में अक्सर पैरों की उंगलियों के बीच की त्वचा में बदलाव नहीं होता है।

उपचार

- सर्वोत्तम संभव उपचार के लिए, हमेशा पंजीकृत और योग्य पशु चिकित्सक से परामर्श करें।
- खुरपका के उपचार के लिए फुटबाथ एक अच्छा विकल्प है। इसके लिए समाधान जिंक सल्फेट(15 प्रतिशत) या कॉपर सल्फेट (2.5 प्रतिशत) या फॉर्मलाडेहाइड (2.5 प्रतिशत) दवा का प्रयोग किया जा सकता है। फुटबाथ के बाद, खुरों को एक साफ और दृढ़ सतह पर सूखने दिया जाना चाहिए। ध्यान रखा जाना चाहिए कि कोई भी पशु फुटबाथ के घोल का सेवन न करें, इससे विषाक्तता हो सकती है।
- खुरपका को नियंत्रित करने और उपचार करने के लिए रोगाणुरोधी दवा विशेष रूप से एंटीबायोटिक्स आवश्यक है।
- इंजेक्टेबल ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन (10 mg/kg, IM)का उपयोग लगातार 5 दिनों तक किया जा सकता है।
- किसी भी खुर के घाव को रुई और बीटाडीन के घोल से साफ करें।
- रोगाणुरोधी पाउडर/मलहम का प्रयोग भी प्रभावी हो सकता है।
- दर्द कम करने के लिए मेलोक्सिकैम (0.5 mg/kg, IM) जैसी दर्द निवारक और सूजनरोधी दवाइयां दी जानी चाहिए।
- वैज्ञानिक और अनुसंधानकर्ता वर्तमान में भारत में खुरपका को नियंत्रित करने के लिए एक प्रभावी टीका विकसित करने के लिए कड़ी मेहनत कर रहे हैं।

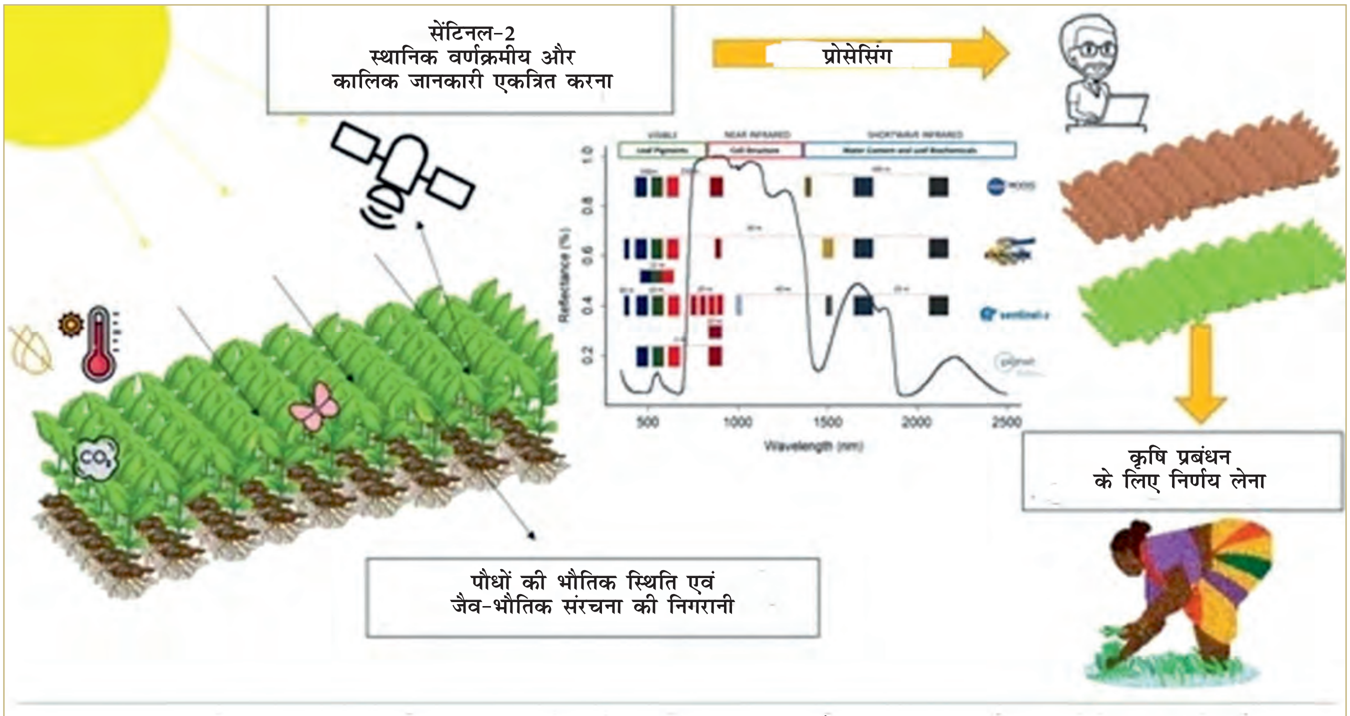

कृषि निगरानी हेतु रिमोट सेंसिंग सेंटिनल-2 की विशेषताएं और सटीक कृषि में उपयोग

कृषि में सुदूर संवेदन प्रणाली का अनुप्रयोग

अचिन कुमार और **राजीव पदभूषण**

"वर्ष 2050 तक, विश्व की जनसंख्या 10 अरब तथा भारत की 166 करोड़ के लगभग होने की उम्मीद है। इस बढ़ती जनसंख्या की खाद्य मांग को पूरा करने के लिए भारत को वर्तमान 252 मिलियन टन की तुलना में वर्ष 2050 तक 333 मिलियन टन आहार का उत्पादन करने की आवश्यकता होगी। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी मानी जाती है और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में सुविज्ञ निर्णय लेने हेतु कृषि पर समयबद्ध सूचना की उपलब्धता अति आवश्यक है। हाल की तकनीकी प्रगति ने हमारे लिए दुनिया की आबादी को खिलाने के लिए कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि करना संभव बना दिया है। भारत, विश्व के कुछ देशों में से एक है, जो फसल उत्पादन के नियमित नवीनीकरण आंकड़े तैयार करने के लिए अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी और भू-आधारित अवलोकनों का उपयोग कर दीर्घकालिक कृषि लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सूचना प्रदान करता है। डिजिटल प्रौद्योगिकियों में प्रगति के कारण चौथी कृषि क्रांति शुरू हो गई है। अभी भी कई बाधाओं को दूर करना बाकी है, जिनमें फसल भूमि की कमी, जल आपूर्ति में कमी और जलवायु परिवर्तन शामिल हैं। स्थायी कृषि प्रबंधन के लिए सुदूर संवेदन, ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम,भौगोलिक सूचना प्रणाली, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, कम्प्यूटेशनल सिस्टम, उपग्रह, विमान, ड्रोन और डेटा एनालिटिक्स जैसी उन्नत तकनीकों का उपयोग कर उन्हें मानचित्रों और गैर-विजुअलाइज्ड डेटा से जोड़कर लक्षित लक्ष्य निर्धारित किया जाना आवश्यक है। इसके परिणामस्वरूप स्थलाकृति, मृदा के प्रकार, उर्वरक, फसल की स्थिति, स्वास्थ्य और अन्य विषयों पर विवरण वाला एक मानचित्र प्राप्त होता है।"

सुदूर संवेदन तकनीक का अभिप्राय किसी भी वस्तु से भौतिक संपर्क किये बिना उसके बारे में जानकारी का अधिग्रहण करना है। इस प्रणाली का कृषि क्षेत्र में समस्याओं के समाधान हेतु निम्न तरीकों से अनुप्रयोग किया जा सकता है:

सहायक प्राध्यापक सह कनिष्ठ वैज्ञानिक (मृदा एवं कृषि रसायन विज्ञान विभाग), नालंदा उद्यान कॉलेज नूरसराय, नालंदा, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, साबौर, भागलपुर (बिहार)

फसल उत्पादन का पूर्वानुमान

सुदूर संवेदन प्रणाली का उपयोग किसी दिए गए क्षेत्र में अपेक्षित फसल उत्पादन और उपज का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है। इससे विशिष्ट परिस्थितियों में फसल की मात्रा का अनुमान लगाकर उसकी उत्पादकता निर्धारित की जा सकती है। परिणामस्वरूप सरकारें सटीक उपज पूर्वानुमान के उपयोग से खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कर निगम राजस्व का पूर्वानुमान लगा सकती हैं और इसके अनुसार बजट बना सकती हैं। ये भविष्यवाणियां उपग्रहों, सेंसरों, बड़े डेटा को जोड़ने वाली हालिया तकनीकी प्रगति की बदौलत संभव हुआ है। कन्वेन्शनल न्यूरल नेटवर्क (कन्वनेट्स या सीएनएन) इस क्षेत्र की सबसे गहन विधियों में से एक हैं।

फसल उपज मॉडलिंग पहचान एवं विश्लेषण

सुदूर संवेदन ने फसल की पहचान में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, खासकर ऐसे

मामलों में जहां अवलोकन के तहत फसल अज्ञात है या कुछ रहस्यमय विशेषताओं को दिखाती है। सुदूर संवेदन प्रणाली किसानों और विशेषज्ञों को फसल की गुणवत्ता और खेत की सीमा का आकलन करके किसी दिए गए खेत से अपेक्षित फसल की उपज की भविष्यवाणी करने की अनुमति देती है।

फसल से आंकड़े एकत्र कर प्रयोगशालाओं में ले जाकर फसल के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जा सकता है। विभिन्न फसल रोपण प्रणालियों के विश्लेषण एवं मुख्य रूप से बागवानी उद्योग में भी यह तकनीक उपयोग में लाई गई है, जहां फूलों की वृद्धि के पैटर्न का विश्लेषण किया जा सकता है।

सुदूर संवेदन तकनीक ने किसानों और अन्य कृषि विशेषज्ञों को फसल पोषक तत्वों की कमी की सीमा निर्धारित करने और फसलों में पोषक तत्वों के स्तर को बढ़ाकर समग्र फसल की पैदावार में भी वृद्धि की जा सकती है।

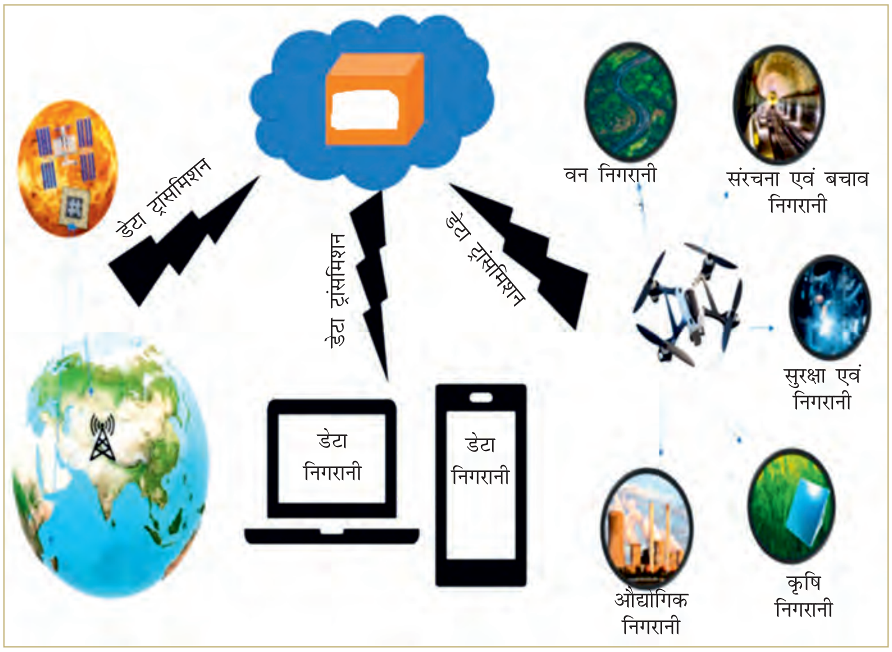

सुदूर संवेदन प्रणाली के बहुआयामी उपयोग

पशुधन निगरानी

विशिष्ट पशुओं की गतिविधियों पर नजर रखना पशुपालन में फार्म जीआईएस सॉफ्टवेयर का सबसे सरल उपयोग है। यह किसानों को खेत में पशुओं का पता लगाने और उनके पोषण, प्रजनन क्षमता और स्वास्थ्य पर नजर रखने में सक्षम बनाता है। प्रत्येक पशु की गर्दन या कान पर एक ट्रैकर लगाकर पशुओं को एक मोबाइल डिवाइस की सहायता से ट्रैक कर डेटा प्राप्त कर सकते हैं। जीआईएस की मदद से डिजिटल स्केल पर पशुओं की आईडी को स्कैन कर उन्हें सिस्टम में अपडेट कर सकते हैं और उनकी जानकारी को मैन्युअल रूप से दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है।

कीट एवं रोग नियंत्रण

हानिकारक कीटों के संक्रमण से कृषि को काफी नुकसान होता है। सुदूर संवेदन प्रणाली इसे रोकने के लिए सटीक, समय पर अलार्म बनाने में मदद कर सकती है। हालांकि, उत्कृष्ट रिज़ॉल्यूशन वाली तस्वीरें भी संक्रमण के शुरुआती लक्षण दिखाने में विफल हो सकती है। गहन शिक्षण एल्गोरिदम का उपयोग करके, आप एक तंत्रिका नेटवर्क बनाकर संक्रमित भूमि की तस्वीरें फीड करके, उन नमूनों को पहचान सकते हैं। खेत में कीटों की पहचान करने में भी सुदूर संवेदन तकनीक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और खेत में कीटों और रोगों से छुटकारा पाने के लिए इस्तेमाल होने वाले सही कीट नियंत्रण तंत्र पर आंकड़े उपलब्ध करवाती है।

सिंचाई प्रबंधन

सुदूर संवेदन तकनीक से मृदा में नमी की मात्रा की जानकारी कर सिंचाई प्रबंधन किया जा सकता है। इस जानकारी का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि किसी विशेष मृदा में नमी की कमी है या नहीं। इन आंकड़ों के माध्यम से यह प्रणाली मृदा की सिंचाई आवश्यकताओं की योजना बनाने में मदद करती है।

कृषि में भू-सूचना विज्ञान की मदद से फसल को पर्याप्त सिंचाई प्रबंधन कर, व्यापक क्षेत्रों की निगरानी के कठिन कार्य को आसानी से संभाला जा सकता है। यह प्रणाली उच्च-रिज़ॉल्यूशन कैमरों का उपयोग करके विमान और उपग्रहों द्वारा ली गई छवियों को एल्गोरिदम की सहायता से प्रत्येक फसल में पानी के तनाव को निर्धारित करने और पानी की कमी के पीछे के दृश्य की पहचान करने में सक्षम बनाती है।

सुदूर संवेदन द्वारा प्राप्त तस्वीरों को जल

आधुनिक कृषि

डिजिटल प्रौद्योगिकियों में प्रगति के परिणामस्वरूप टिकाऊ प्रबंधन के लिए कृषि पर्यावरण के विश्लेषण के साथ कृषि क्षेत्रों जैसे कि फसल रकबा अनुमान, फसल वृद्धि निगरानी, फसल मॉडलिंग, फसल उपज अनुमान, मृदा की नमी का अनुमान, मृदा की उर्वरता का मूल्यांकन, साइट-विशिष्ट प्रबंधन, फसल तनाव का पता लगाना, बदलते जलवायु परिदृश्यों के तहत कृषि प्रणाली की स्थिरता को बनाए रखने, फसल में रोगों और कीटों के संक्रमण का पता लगाना, जल संसाधन, सूखा एवं बाढ़ की स्थिति की निगरानी, मौसम का पूर्वानुमान, भूमि उपयोग, भूमि आवरण विश्लेषण और सटीक खेती के लिए रिमोट सेंसिंग एक महत्वपूर्ण उपकरण है। रिमोट सेंसिंग समय पर डेटा संक्षिप्त, कृषि संसाधनों के साथ-साथ बहु-अस्थायी, बहु-वर्णक्रमीय और बहु-स्थानिक रिज़ॉल्यूशन पर जलवायु परिदृश्यों की निगरानी और प्रबंधन करने का प्रचुर अवसर प्रदान करता है। कृषि विशेषज्ञों के लिए छवि स्रोतों एवं विश्लेषण तकनीकों की निरंतर बढ़ती श्रृंखला की विशेष क्षमताओं को समझना तत्काल आवश्यक है। यह कृषि और जलवायु डेटाबेस को वास्तविक समय के मूल्यांकन प्राप्त करने के लिए रिमोट सेंसिंग प्लेटफार्मों का उपयोग करने की संभावित उपयोगिता पर जोर बढ़ाता है। भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) के साथ उपग्रह रिमोट सेंसिंग को व्यापक रूप से लागू कर भूमि उपयोग और भूमि आवरण पर परिवर्तन का पता आसानी से लगाया जा सकता है। इसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर कृषि क्षेत्र में डिजिटल मृदा मानचित्रण के लिए दूर से संवेदी डेटा का उपयोग करने के दृष्टिकोण को बढ़ाएंगे।

वितरण प्रणाली मानचित्रों के साथ जोड़कर यह निर्धारित कर सकते हैं कि आपकी वर्तमान सिंचाई प्रणाली कितनी अच्छी तरह काम कर रही है।

कटाव, बाढ़ और सूखे को रोकना

मृदा के कटाव के प्रति भूमि के एक टुकड़े की संवेदनशीलता का आकलन करने के लिए जीआईएस और रिमोट सेंसिंग के संयोजन में सार्वभौमिक मृदा हानि समीकरण का उपयोग किया जा सकता है।

यूएसएलई कारकों को सत्यापित करने के लिए उपग्रह तस्वीरों पर वर्णक्रमीय विश्लेषण चलाएं और फिर फील्ड माप के साथ उन छवियों की पुष्टि कर सकते हैं। परिणामस्वरूप, एक मानचित्र का निर्माण किया जा सकता है, जिसमें दिखाया गया हो कि पूरे क्षेत्र में मृदा कितनी क्षतिग्रस्त है। इस प्रक्रिया के माध्यम से हानिकारक प्राकृतिक घटनाओं को रोकने, मूल्यांकन करने और उनके प्रभावों को कम करने के लिए मिलकर काम कर सकते हैं।

बाढ़ सूची मानचित्रण तकनीकों का उपयोग करके, उन क्षेत्रों का पता लगा सकते हैं, जो बाढ़ के प्रति संवेदनशील हैं। इसके लिए पिछली बाढ़, क्षेत्र अध्ययन और उपग्रह तस्वीरों के बारे में जानकारी एकत्र करना आवश्यक है। बाढ़ के जोखिमों की पहचान करने और उनका मानचित्रण करने के लिए तंत्रिका नेटवर्क डेटा का उपयोग करके एक डेटासेट बनाया जा सकता है, जो आपदा प्रबंधन के लिए सही उपकरण होगा।

भूमि आच्छादन और भूमि क्षरण मानचित्रण

सुदूर संवेदन तकनीक ने समस्याग्रस्त मृदा की पहचान में भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मृदा का मानचित्रण सुदूर संवेदन के अभी तक के सबसे महत्वपूर्ण उपयोगों में से एक है। किसी क्षेत्र के भूमि उपयोग/भूमि आच्छादन का मानचित्रण करने के लिए विशेषज्ञों द्वारा सुदूर संवेदन का उपयोग किया गया है। विशेषज्ञ अब बता सकते हैं कि किन क्षेत्रों में भूमि का क्षरण हुआ है और कौन से क्षेत्र अभी भी बरकरार हैं। इससे भूमि क्षरण को रोकने के उपायों को लागू करने में भी मदद मिलती है।

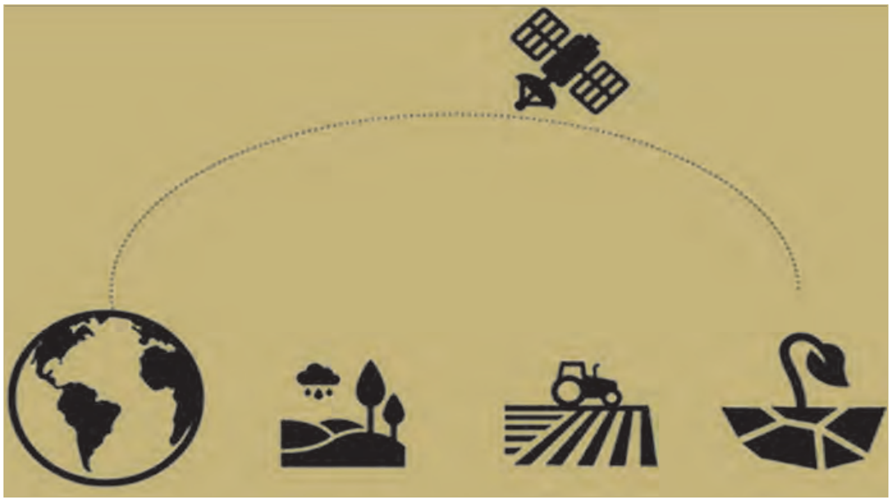

सुदूर संवेदन प्रणाली से आधुनिक कृषि

मृदा मानचित्रण के माध्यम से, वैज्ञानिक यह बताने में सक्षम होते हैं कि कौन सी मृदा किस फसल के लिए आदर्श है और किस मृदा के लिए सिंचाई की कितनी आवश्यकता होती है, यह जानकारी सटीक कृषि में मदद करती है। सुदूर संवेदन के विभिन्न प्रायोजनों द्वारा बनाए गए मानचित्र से फसल उगाने, सटीक कृषि करने और विशिष्ट उद्देश्यों के लिए विशिष्ट भूमि का उपयोग करने में मदद मिलती है।

जल संसाधन मैपिंग

सुदूर संवेदन जल संसाधनों की मैपिंग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिसका उपयोग कृषि के लिए किया जा सकता है। सुदूर संवेदन के माध्यम से, किसान यह बता सकते हैं कि भूमि पर उपयोग के लिए जल संसाधन उपलब्ध हैं या नहीं और क्या संसाधन पर्याप्त हैं।

कृषि उत्पादन प्रणालियां विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु और मृदा में भिन्नता के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं और प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारत में कृषि छोटी जोत, अपर्याप्त संसाधन और कृषि-तकनीकी जानकारी की कमी के कारण बाधित है। बदलते जलवायु परिदृश्यों के तहत, कृषि योजना और कृषि प्रौद्योगिकियों के उपयोग के लिए सटीक डेटा विश्लेषण, पूर्वानुमान, कृषि योजना प्रबंधन, विभिन्न क्षेत्रों में कृषि संसाधनों और पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता में उनके प्रभावी अनुप्रयोग के लिए सटीक स्थानिक-लौकिक जानकारी की आवश्यकता होती है।

जीआईएस द्वारा सटीक खेती स्थान और स्थानिक बुद्धिमत्ता के उपयोग के माध्यम से वास्तविक समय में डेटा एकत्र करना और उसका विश्लेषण कर खेतों की उत्पादकता और लाभप्रदता को बढ़ाया जा सकता है। जीआईएस अपने वर्तमान एवं भविष्य के अनुप्रयोगों के साथ-साथ पुरानी और नई साझेदार प्रौद्योगिकियों के कारण स्थायी कृषि उत्पादकता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।

फसल स्वास्थ्य एवं क्षति निगरानी

बड़े पैमाने पर फसलों के स्वास्थ्य का पारंपरिक रूप से निरीक्षण करना बहुत कठिन कार्य है। रिमोट सेंसिंग और जीआईएस की मदद से सीएनएन, रेडियल बेसिस फंक्शन नेटवर्क (आरबीएफएन), परसेप्ट्रॉन और तंत्रिका नेटवर्क का उपयोग करके फसल स्वास्थ्य निर्धारित करना आसान हो गया है। पूरे क्षेत्र में पर्यावरणीय चर, जैसे आर्द्रता, वायु तापमान, सतह की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए, उपग्रह फोटो और इनपुट डेटा को जोड़ा जा सकता है। सटीक खेती, जो जीआईएस पर आधारित है, ऐसे मूल्यांकन में सुधार कर सकती है। यह निर्धारित करने में कृषकों की सहायता कर सकती है कि किन फसलों को अधिक देखभाल की आवश्यकता है। फसल के तापमान की निगरानी के लिए यह प्रणाली एक उन्नत विधि उपग्रहों और विमानों पर छवि सेंसर का उपयोग करती है। यदि तापमान सामान्य से अधिक है, तो यह रोग, संक्रमण या अपर्याप्त पानी का संकेत हो सकता है। फसल क्षति या फसल की प्रगति की स्थिति में, सुदूर संवेदी प्रौद्योगिकी का उपयोग खेत में सूखे और यह निर्धारित करने के लिए किया जा सकता है कि किस फसल को कितना नुकसान हुआ है और खेत में शेष फसल की प्रगति की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। है।

वैज्ञानिक मत्स्यपालन से समृद्धि

एच.के. डे, एस.एस. रथ, सी.के. मिश्रा, एस.एन. सेठी, यू.एल. मोहंती, एस.के. बेहेरा और **एस. सौरभ**

श्री अरक्षित पोई, राइतला गांव के एक मत्स्य पालक हैं, जिन्होंने वर्ष 2017 में 0.1 हैक्टर तालाब से मछली पालन शुरू किया। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान, भुबनेश्वर से वैज्ञानिक प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद, इन्होंने मछली पालन की उन्नत तकनीकों को अपनाया, जिससे उत्पादन और आय दोनों में भारी वृद्धि हुई। वर्ष 2024 में, उन्हें राष्ट्रीय मत्स्य किसान दिवस पर इनके उत्कृष्ट योगदान के लिए सम्मानित किया गया। इनकी सफलता नवाचार, संघर्ष और सामुदायिक सशक्तिकरण का एक प्रेरणादायक उदाहरण है।

ढेंकानाल, ओडिशा में जल संसाधनों की प्रचुरता के कारण मत्स्य पालन स्थानीय निवासियों के लिए एक प्रमुख आजीविका स्रोत बन गया है। इन्हीं में से एक हैं, राइतला गांव के श्री अरक्षित पोई, जो 53 वर्ष के हैं। ये इस क्षेत्र के एक प्रगतिशील और उत्साही मत्स्य पालक हैं। इनकी यात्रा संघर्ष, नवाचार और समुदाय पर सकारात्मक प्रभाव की एक प्रेरणादायक कहानी है, जिसमें इन्होंने इस व्यवसाय में सफलता पाने के लिए कई कठिनाइयों का सामना किया और नये उपायों को अपनाया।

भाकृअनुप-केंद्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान, भुबनेश्वर-751002, (ओडिशा)

वर्ष 2017 में मत्स्य पालन की शुरुआत करते समय, श्री पोई ने कई चुनौतियों का सामना किया। इनके पास केवल 0.1 हैक्टर तालाब और सीमित संसाधन थे। इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को ऊपर उठाने की दृढ़ इच्छाशक्ति सफलता की प्रेरणा थी। इनकी शैक्षणिक पृष्ठभूमि सामान्य केवल मैट्रिक तक थी, लेकिन दृढ़ संकल्प और मेहनत के बल पर इन्होंने सफलता की इच्छा प्रकट की। वर्ष 2021 में, श्री पोई ने वैज्ञानिक तरीकों से मत्स्यपालन की प्रथाओं को अपनाते हुए अपनी यात्रा के महत्वपूर्ण चरण में प्रवेश किया।

उन्हें भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-केंद्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान (भाकृअनुप-सीफा) और भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के तहत परियोजना से समर्थन प्राप्त हुआ। इसके तहत मत्स्य पालकों को मीठापानी जलकृषि पर व्यापक प्रशिक्षण प्रदान किया गया। इस प्रशिक्षण ने श्री अरक्षित पोई को मत्स्य अंगुलिका उत्पादन प्रौद्योगिकी और मछली पालन में महत्वपूर्ण ज्ञान और कौशल प्रदान किया। सीफा के मार्गदर्शन में, इन्होंने मछलियों का चयन, पोषण और रोग प्रबंधन जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं में विशेषज्ञता प्राप्त की।

सीफा का समर्थन इनके विकास में महत्वपूर्ण रहा, जिसमें इन्हें मछली के बीज, चूना और आहार जैसी आवश्यक सामग्री प्राप्त हुई। इससे मछली पालन प्रथाओं में सुधार हुआ। वर्तमान में, ये 0.9 हैक्टर क्षेत्र में 8 तालाबों में कार्प पालन कर रहे हैं, जिनमें से 6 तालाबों (0.1 हैक्टर) में मछली अंगुलिका

उन्नत तकनीक द्वारा मत्स्य पालन

उत्पादन किया जा रहा है। इन्होंने कार्प पालन के लिए 2 तालाबों को पट्टे पर लिया है।

वैज्ञानिक तकनीक को अपनाने से पहले, श्री आरक्षित की कुल उत्पादन क्षमता लगभग 3.7 क्विंटल थी। हालांकि, सीफा की वैज्ञानिक कार्प पालन प्रौद्योगिकी के साथ, उनका उत्पादन तीन वर्षों में 14 क्विंटल तक बढ़ गया। उनकी शुद्ध आय भी वर्ष 2020-21 में 35,000 रुपये से बढ़कर वर्ष 2023-24 में 2,80,000 रुपये हो गई। इस अवधि में उनकी उत्पादन क्षमता 3.7 क्विंटल/हैक्टर से बढ़कर 17.5 क्विंटल/हैक्टर हो गई। बीज पालन में भी उन्होंने उत्कृष्ट परिणाम हासिल किए, जिसमें 3 महीने में 80-90 मि.मी. के अंगुलिका प्राप्त हुए, जिनकी उत्तरजीविता दर 55-60 प्रतिशत है जिसमे से ये कुछ स्थानीय बिक्री के लिए, कुछ आहार के लिए और बाकी अगले चरण में उत्पादन के लिए उपयोग करते हैं।

प्रशिक्षण से उत्पादन में सुधार

श्री पोई की उपलब्धियां असाधारण एवं अनदेखी हैं। वर्ष 2024 में राष्ट्रीय मत्स्य किसान दिवस पर, भाकृअनुप-सीफा ने वैज्ञानिक मत्स्य पालन में इनके उत्कृष्ट योगदान के लिए सम्मानित किया। उन्नत कृषि तकनीकों को अपनाने और लागू करने की इनकी क्षमता ने उन्हें प्रगतिशील मत्स्य किसान के रूप में पहचान दिलवाई। अपनी व्यक्तिगत सफलता के अलावा, इन्होंने सामुदायिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लिया, अपने ज्ञान और अनुभवों को साथी किसानों के साथ साझा किया, जिससे सामूहिक विकास और सुधार की भावना को बढ़ावा मिला।

स्वस्थ मत्स्य उत्पादन

श्री अरक्षित की सफलता शिक्षा और प्रेरणा का प्रतीक है, जो मछली पालन में नवाचारों को अपनाने की महत्वपूर्णता को दर्शाती है। इनकी यात्रा सामाजिक-आर्थिक सुधारों की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, जो वैज्ञानिक तकनीकों के उपयोग से संभव हुई। आज, श्री पोई अन्य मत्स्य पालकों को नवाचारों को अपनाने और मछली पालन में उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं। इनकी सफलता सामुदायिक सशक्तिकरण और सतत विकास की दिशा में एक प्रेरणादायक कदम है

निवेदन

लेखक बंधु *खेती* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ निम्न पोर्टल पर ही अपने मोबाइल नम्बर के साथ भेजें। ध्यान रखें कि फोटो जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1200 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी भेज सकते हैं।

हमारा पोर्टल है :
epatrika.icar.org.in

–संपादक

सम्पूर्ण आहार

दूध में शरीर को शक्ति देने वाले सभी तत्व पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इसमें सभी पोषक तत्व जैसे-वसा, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, एंजाइम, खनिज तत्व तथा विटामिन आदि या तो घोल या निलम्बन अथवा पायस के रूप में सदैव द्रव अवस्था में पाए जाते हैं। आहार विशेषज्ञों की मानें तो ये भी पोषक तत्व मांसपेशियों और हड्डियों के गठन में अहम भूमिका निभाते हैं। इसमें उपस्थित प्रोटीन एंटीबॉडीज के रूप में कार्य करता है और संक्रमण से बचाता है। मनुष्य सिर्फ दूध पीकर जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक आनंदपूर्वक जीवन निर्वाह कर सकता है। इसके सेवन से किसी प्रकार के रोग होने की आशंका नहीं रहती है। पौष्टिकता की दृष्टि से दूध एकमात्र सम्पूर्ण आहार है।

दूध में मिलावट की पहचान

राजेश कुमार और **अविनाश चौहान**

"दूध प्रकृति का सबसे पौष्टिक आहार है। मनुष्य के लिए यह सर्वोत्तम और संपूर्ण खाद्य उत्पाद है एवं पोषण संबंधी अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। दूध वह आहार है जो स्तनपायी प्राणियों को जन्म लेते ही सबसे पहले उपलब्ध होता है। मानव शिशु तो प्रारंभिक 5-6 माह तक एवं बाद में कुछ माह तक आंशिक रूप से माता के दूध पर ही निर्भर रहता है। दूध एक ऐसा पेय है, जो आसानी से पच जाता है। इसमें शारीरिक वृद्धि करने वाले, शरीर को शक्ति देने वाले सभी तत्व विद्यमान रहते हैं। पोषण में समृद्ध एवं मांग में निरंतर वृद्धि के कारण वर्तमान में दूध में मिलावट की घटनाएं दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। अधिक मुनाफा कमाने हेतु दूध में पानी, स्टार्च, डिटर्जेंट या सिंथेटिक दूध मिलाया जा रहा है। यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इस मिलावट से दूध की मात्रा बढ़ तो जाती है, लेकिन गुणवत्ता प्रभावित होती है। दूध में मिलावट की पहचान विभिन्न तरीकों से की जा सकती है।"

वैचारिक समूह के आधार पर दुग्ध को तीन तरह से परिभाषित किया जा सकता है:

जैविक

- मादा स्तनधारियों के प्रसव बाद उनके नवजात शिशु को तत्काल आवश्यक नियमित पोषण हेतु माता की स्तंन ग्रंथियों से आवश्यक पोषक तत्वों युक्त निरन्तर सुरक्षित स्रावित तरल पदार्थ को दूध कहते हैं।
- दूध स्वस्थ एवं उचित रूप से पोषित दुधारू गायों के सम्पूर्ण एवं सतत दोहन से प्राप्त होने वाला सम्पूर्ण उत्पाद है।
- दूध स्तनधारी पशुओं की दुग्ध ग्रन्थियों से प्राप्त एक तरल पदार्थ है, जो नवजात शिशु के जन्म के तुरन्त बाद उसके पोषण के लिए स्रावित होता है।

रासायनिक परिभाषा

रासायनिक दृष्टि से दूध एक विषमांग उत्पाद है, जिसमें वसा, प्रोटीन, शर्करा तथा खनिज पदार्थ क्रमशः इमल्सन, कोलाईडी निलम्बन तथा वास्तविक विलयन के रूप में जल की सतत तरल प्रावस्था में उपलब्ध रहते हैं।

व्यापारिक परिभाषा

दूध एक शुद्ध ताजा लैक्टियल स्राव है, जो एक या एक से अधिक स्वस्थ एवं उचित रूप से पोषित गायों के पूर्ण दोहन से प्राप्त किया गया हो। इसमें पशु के 15 दिनों पूर्व तथा 5 दिनों बाद तक का दूध सम्मिलित नहीं है। इसमें दुग्ध वसा तथा वसाहीन पदार्थों की न्यूनतम मात्रा होनी चाहिए।

विपणित दूध के प्रकार

विपणित दूध से अभिप्राय उस पूर्ण, किण्वित एवं सुरक्षित दूध से है जो व्यक्तिगत उपभोक्ता को सीधे उपभोग हेतु बाजार में क्रय के लिए उपलब्ध करवाया गया हो। इसमें वह दूध सम्मिलित नहीं है, जो उत्पादक द्वारा अपने परिवार में उपभोग हेतु रख लिया जाता है या उद्योगों में दुग्ध उत्पाद निर्माण के लिए उपयोग होता है।

- **सम्पूर्ण दूध:** स्वस्थ पशु से प्राप्त किया गया दूध जिसमें ठोस परिवर्तन न किया गया हो, पूर्ण दूध कहलाता

विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, ठाकुर द्वारा, मुरादाबाद-II (उत्तर प्रदेश)

सारणी 1. दूध में मिलावट का पता लगाने के लिए रासायनिक परीक्षण

मिलावट	परीक्षण	अनुमान	प्रयोग
यूरिया	यूरियेज परीक्षण	दूध की 2 मि.ली. मात्रा नमूने के तौर पर लें और 1 मि.ली. फिनोल लाल (संकेतक) डालें और 5 मिनट के लिए 35 डिग्री सेल्सियस पर पानी में रखें। इसके बाद 0.5 मि.ली. यूरिया डालें। पी-एच कम मात्रा, लाल भूरे रंग-कम सांद्रता, गुलाबी-मध्यम सांद्रता और मेजेंटा-उच्च सांद्रता	एसएनएफ और लैक्टोमीटर की रीडिंग को बढ़ाने के लिए।
डिटर्जेंट	5-10 मि.ली. नमूने को पानी की समान मात्रा के साथ मिलाकर हिलाएं।	लैदर का गठन दूध में डिटर्जेंट की उपस्थिति की पुष्टि करता है	दूध में रंग सुधार और एसएनएफ में वृद्धि के लिए
स्टार्च	आयोडीन परीक्षण-आयोडीन की कुछ बूंदें नमूने में डालें।	नीले काले रंग की उपस्थिति स्टार्च की उपस्थिति को इंगित करती है	दूध को गाढ़ा करने और लैक्टोमीटर रीडिंग बढ़ाने के लिए।
शर्करा	एक परीक्षण ट्यूब में दूध के नमूने की 2 मि.ली. और बेनेडिक्ट अभिकर्मक की समान मात्रा डालें। इसे 5 मिनट के लिए उबलते पानी में रखें और रंग परिवर्तनों का निरीक्षण करें।	नीला रंग-कोई ग्लूकोज मौजूद नहीं है: हरा-ट्रेस मात्रा, पीला-कम सांद्रता, नारंगी-मध्यम सांद्रता, लाल-उच्च सांद्रता को दर्शाता है।	स्थिरता और स्वाद बढ़ाने के लिए दूध में ग्लूकोज मिलाया जाता है।
वनस्पति	एक परखनली में 3 मि.ली. दूध लें। हाइड्रोक्लोरिक एसिड की 10 बूंदें डालें। एक चाय का चम्मच चीनी मिलाएं। इसके 5 मिनट के बाद, मिश्रण की जांच करें।	लाल रंग दूध में वनस्पति की उपस्थिति को इंगित करता है।	दूध और एसएनएफ में वसा बढ़ाने के लिए।
पानी	चिकनी तिरछी सतह पर दूध की थोड़ी मात्रा डालें	मिलावटी दूध निशान नहीं छोड़ेगा और तेजी से फिसलेगा।	इसका उपयोग दूध को मात्रा को बढ़ाने के लिए किया जाता है। इससे गुणवत्ता में कमी आती है।
सिंथेटिक दूध	उंगलियों के बीच दूध की एक बूंद रगड़ें और दूध की थोड़ी मात्रा उबालें और रंग परिवर्तन देखें।	उंगलियों के बीच रगड़ने पर साबुन का अहसास देता है और गर्म होने पर पीला हो जाता है।	यूरिया, डिटर्जेंट, पेंट और तेल आदि को मिलाकर सिंथेटिक दूध बनाया जाता है

है। पूर्ण दूध में वसा तथा वसाहीन ठोस की न्यूनतम मात्रा गाय में 3.5 प्रतिशत तथा 8.5 प्रतिशत और भैंस में 6 प्रतिशत तथा 9 प्रतिशत क्रमशः रखी गई है।

- **मानक दूध:** यह दूध जिसमें वसा तथा वसाहीन ठोस की मात्रा दूध से क्रीम निकालकर दूध में न्यूनतम वसा 4.5 प्रतिशत तथा वसाहीन ठोस 8.5 प्रतिशत रखी जाती है।
- **टोण्ड दूध:** पूर्ण दूध में पानी तथा दूध पाऊडर को मिलाकर टोण्ड दूध प्राप्त किया जाता है। इसकी वसा 3 प्रतिशत तथा वसाहीन ठोस की मात्रा 8.5 प्रतिशत निर्धारित की गयी है।
- **डबल टोण्ड दूध:** इस दूध में वसा 1.5 प्रतिशत तथा वसाहीन ठोस 9 प्रतिशत निर्धारित रहती है।
- **रिक्सटिट्यूटेड दूध:** जब दूध के पाऊडर को पानी में घोलकर दूध तैयार किया जाता है। इसमें 1 भाग दूध पाऊडर तथा 7 से 8 भाग पानी मिलाते हैं, तो उसमें रिकन्सटिट्यूटेड दूध कहते हैं।
- **रिकम्बाइण्ड दूध:** यह दूध जो बटर ऑयल, सप्रेस दूध पाऊडर तथा पानी की निश्चित मात्रा को मिलाकर तैयार किया जाता है, उसे रिकम्बाइण्ड दूध कहते हैं। इसमें वसा की मात्रा 3 प्रतिशत तथा वसाहीन ठोस की मात्रा 8.5 प्रतिशत निर्धारित की गई है।
- **फिल्ड दूध:** जब पूर्ण दूध में से वसा को निकालकर उसके स्थान पर वनस्पति वसा को मिलाया जाता है उसे फिल्ड दूध कहते हैं।

सारणी 2. दूध में विभिन्न पदार्थों के मिलावट से प्रभाव

दूध सामान्य मिलावट	प्रभाव
पानी	यह न केवल दूध के पोषण मूल्य को कम करता है, बल्कि दूषित पानी स्वास्थ्य समस्याओं का कारण भी बन सकता है।
यूरिया	उल्टी, मिचली और गैस्ट्राइटिस की समस्या का होना।
स्टार्च	सॉलिड मिल्क पेस्ट पेट के रोगों का कारण बन सकता है।
डिटर्जेंट	डिटर्जेंट में सोडियम होता है जो उच्च रक्तचाप और हृदय रोगों से ग्रसित लोगों के लिए बेहद हानिकारक है।
कास्टिक सोडा	यह उच्च रक्तचाप और हृदय रोगों से ग्रसित लोगों के लिए हानिकारक होता है। यह आहार नली के म्यूकोसा को नुकसान पहुंचाता है, विशेष रूप से बच्चों में
शर्करा	दूध का पौष्टिक मूल्य घटता है।
तेल	यह दूध को मलाईदार बनावट देता है। इसके साथ ही स्वास्थ्य के लिए बेहद हानिकारक है।
अन्य सिंथेटिक यौगिक	अन्य सिंथेटिक यौगिक शरीर के विभिन्न अंगों की कार्य प्रणाली को क्षति पहुंचाते हैं, हृदय की समस्याओं एवं कैंसर जैसे गंभीर रोगों का कारण बनते हैं।

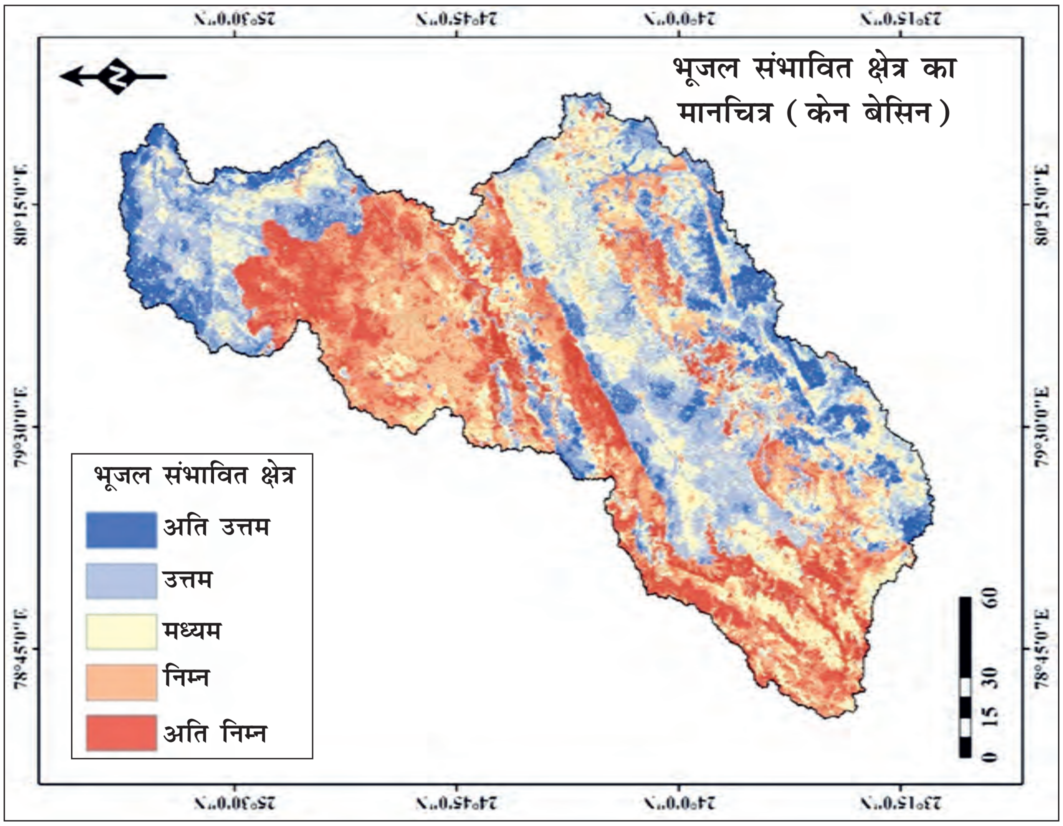

भूजल संभावित क्षेत्रों की पहचान में उपयोगी जियोइन्फॉर्मेटिक्स तकनीक

दीपक पटले और **मनोज कुमार अवस्थी**

"वर्तमान परिदृश्य में भूजल एक ऐसा अनमोल स्रोत है, जिसका उपयोग मुख्यत: पीने के पानी, घरेलू कार्य, कृषि, पशुपालन एवं औद्योगिक क्षेत्रों में बहुतायत में किया जाता है। बीते कुछ दशकों की तुलना में, कृषि क्षेत्र में सिंचाई हेतु भूजल का उपयोग अधिक मात्रा में किया जा रहा है। इसका प्रमुख कारण बढ़ती आबादी की आपूर्ति हेतु सतही जल संग्रहण क्षेत्रों का लगातार कम होना तथा खुले कुंओं का कम उपयोग एवं लुप्त होना है। इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन के कारण एक ही क्षेत्र के अलग-अलग भागों में होने वाली असमान एवं असमय वर्षा भी जलस्तर को प्रभावित करती है। यही कारण है कि कम होता जल स्तर एक चिंताजनक विषय बना हुआ है। यह भूजल प्रत्येक वर्ष, ज्यादातर बारिश से फिर से भर जाता है। यह पुन: पूर्ति प्रत्येक जगह या प्रत्येक वर्ष एक जैसी नहीं होती। इस पानी का दीर्घकालिक रूप से उपयोग करने के लिए, सटीक रूप से यह जानना होगा कि उन क्षेत्रों में कितना भूजल उपलब्ध है, जहां जल स्तर मौसमी रूप से ऊपर-नीचे होता रहता है। साफ जल की दिन-प्रतिदिन तेजी से बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए भूजल एक महत्वपूर्ण संसाधन साबित हुआ है। इसके लिए स्थान विशेष पर भूजल क्षमता का अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसके लिए जियोइन्फॉर्मेटिक्स तकनीक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।"

आजकल, सुदूर संवेदन और भौगोलिक सूचना प्रणाली तकनीक को संयुक्त रूप से जियोइन्फॉर्मेटिक्स के रूप में जाना जाता है। यह सभी क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों के आकलन और प्रबंधन के लिए एक व्यापक उपकरण बन रही है।

भूजल संभावित क्षेत्रों के मानचित्रण में पारंपरिक तरीकों जैसे-परीक्षण बोर ड्रिलिंग, स्थलाकृति रूपों का भूभौतिकीय मूल्यांकन एवं क्षेत्र अवलोकन का उपयोग आमतौर पर वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता रहा है। जियोइन्फॉर्मेटिक्स, भूजल संभावित क्षेत्रों के मानचित्रण जैसे अनुप्रयोगों में सबसे लोकप्रिय और कुशल तकनीक है, जो पारंपरिक तरीकों की तुलना में विश्लेषण को काफी आसान बनाती है।

पिछले कुछ वर्षों में, भूजल संभावना क्षेत्रीकरण के अध्ययन हेतु बहु-मापदंड निर्णय लेने के तरीकों के लिए कई प्रकार की विधियों के अध्ययन किए गए हैं। इनमें बहु प्रभावकारी कारक, विश्लेषणात्मक पदानुक्रमिक प्रक्रिया, आवृत्ति अनुपात का उपयोग बहु-मापदंड निर्णय लेने की विधियों के रूप में होता है। भूजल विकास और प्रबंधन हेतु उपयुक्त क्षेत्रों की पहचान करने के लिए भूजल क्षमता क्षेत्रीकरण का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

भूजल संभावित क्षेत्र मानचित्र का निर्माण, भूजल को प्रभावित करने वाले कारकों (जैसे-भूविज्ञान, भूआकृति विज्ञान, भूरेखीय घनत्व, भूमि उपयोग/भूमि आवरण, मृदा संरचना, ढलान, जल धाराओं का घनत्व

मृदा एवं जल अभियांत्रिकी विभाग, कृषि अभियांत्रिकी महाविद्यालय, जबलपुर, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर-482004 (मध्य प्रदेश)

और वर्षा ऋतु की बारिश) की विषयगत परतों को एक समान स्थानिक रेजॉल्यूशन में बनाकर जीआईएस प्रणाली में भारित ओवरले मॉडल के माध्यम से एकीकृत करके तैयार किया जाता है। इस मानचित्र को भूजल संभावना क्षेत्रों की पांच विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है, अर्थात् अति उत्तम, उत्तम, मध्यम, निम्न और अति निम्न। ये पांच भूजल संभावित क्षेत्र की श्रेणियां, उस क्षेत्र में बहुत अधिक भूजल क्षमता से लेकर बहुत कम भूजल क्षमता को दर्शाती हैं।

भूजल संभावित क्षेत्र मानचित्र के माध्यम से भूजल को संरक्षित रखते हुए जलकूप खनन हेतु सबसे उपयुक्त स्थानों की पहचान करने में भी मदद होती है।

मानचित्र निर्माण की विधि

आमतौर पर भूजल संभावित क्षेत्र के मानचित्रण में भूजल को प्रभावित करने वाले कारकों की विषयगत परतों के निर्माण हेतु डेटा संग्रहण एक चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। सर्वप्रथम भूजल को प्रभावित करने वाले कारकों की संख्या निर्धारित करते हैं।

डेटा संग्रहण के बाद सभी कारकों की विषयगत परतों का निर्माण विभिन्न सॉफ्टवेयर की मदद से किया जाता है। प्रत्येक कारक या अवयव में कई कक्षायें हो सकती हैं। सभी अवयवों की विषयगत परतों को वर्गीकृत किया जाता है। उन कारकों की कक्षाओं को 1 से 5 तक श्रेणी प्रदान की जाती है, जो भूजल को प्रभावित करने वाले कारकों के भूजल क्षमता को 'बहुत कम' से लेकर 'बहुत अधिक' प्रभाव के पैमाने को दर्शाती है। उसके बाद, सभी कारको के लिए एक निश्चित भार निर्धारित किया जाता है।

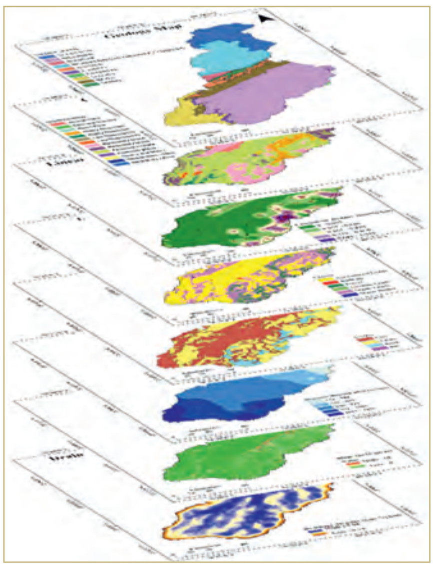

भूजल स्थिति पर आधारित विषय परतें

डेटा संग्रहण

सर्वप्रथम अध्ययन क्षेत्र का मानचित्र तैयार किया जाता है। इसे भारतीय सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रमाणित टोपोशीट या डिजिटल शेफाइल का उपयोग करके बनाया जाता है। भूविज्ञान (जियोलोजी) और भूआकृति (जियोमोर्फोलोजी) मानचित्र 1:50,000 के पैमाने पर या जिस सटीक पैमाने पर उपलब्ध हों, को एकत्र करते हैं। इसरो के भुवन भू-पोर्टल से 1:50,000 के पैमाने वाला भूरेखीय या रेखावस्था (लिनेयामेंट) मानचित्र डाउनलोड किया जा सकता है। भू-उपयोग/भू-आवरण मानचित्र को तैयार करने के लिए 10 मीटर स्थानिक रिज़ॉल्यूशन वाले सेंटिनल-2बी सेटेलाइट इमेज को अमेरिकी भू सर्वेक्षण विभाग के अर्थ एक्सप्लोरर पोर्टल से डाउनलोड करते हैं। मृदा संरचना का मानचित्र तैयार करने के लिए राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन केंद्र, नागपुर से मिट्टी का डेटा एकत्र किया जाता है। मानसून वर्षा मानचित्र तैयार करने के लिए वर्षा के आंकड़े भारतीय मौसम विभाग, पुणे से ग्रिड डेटा (0.25 डिग्री×0.25 डिग्री) के रूप में डाउनलोड किए जाते हैं। शटल रडार टोपोग्राफिक मिशन (एसआरटीएम) (30 मीटर स्थानिक रिजोल्यूशन) के डिजिटल एलिवेशन मॉडल का उपयोग ढलान और जल धाराओं के घनत्व वाले मानचित्र तैयार करने के लिए किया जाता है, जो यूएसजीएस अर्थ एक्सप्लोरर से डाउनलोड होता है। जल डेटा केंद्र से किसी भी राज्य के वांछित क्षेत्र का जलस्तर एवं उन्नत उपज का डेटा प्राप्त किया जा सकता है।

भार के निर्धारण हेतु, बहु-मापदंड निर्णय लेने के तरीकों में से एक बहुप्रचलित विधि विश्लेषणात्मक पदानुक्रमिक प्रक्रिया का उपयोग करते हैं। श्रेणी एवं भार के प्राक्कलन के बाद विषयगत परतों को एक समान स्थानिक रेजॉल्यूशन में बनाकर जीआईएस प्रणाली में भारित ओवरले मॉडल के माध्यम से एकीकृत करके भूजल संभावित क्षेत्र मानचित्र तैयार किया जाता है। जिसे पांच भूजल संभावित क्षेत्र की श्रेणियां नामत: अति उत्तम, उत्तम, मध्यम, निम्न और अति निम्न भूजल संभावित क्षेत्र कहा जाता है।

मानचित्र के निर्माण के बाद, प्राप्त परिणामों का सत्यापन करके ही यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि मॉडल वास्तविक दुनिया की स्थितियों में कितना सटीक परिणाम देगा। तैयार किए गए भूजल संभावित क्षेत्र के पुष्टीकरण या वैधता हेतु कुओं के पंपिंग टेस्ट से प्राप्त उपज डेटा और भूजल स्तर में उतार-चढ़ाव डेटा का उपयोग करते हैं। ये डेटा गांव, ब्लॉक और जिला स्तर पर स्वतंत्र रूप से उपलब्ध नहीं हैं। इन आंकड़ों को विभिन्न सरकारी एजेंसियों से प्राप्त करना पड़ता है। मानचित्र के सत्यापन से प्राप्त परिशुद्धता 75 प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए।

भूजल संभावित क्षेत्र मानचित्र के लाभ

- यह मानचित्र भूगर्भ में भूजल की उपस्थिति के बारे में एक विस्तृत चित्र प्रदान करता है, जिसमें प्रत्येक 10 मीटर×10 मीटर के ग्रिड के लिए अलग-अलग संभावनाएं रंगीन कोडिंग के माध्यम से दर्शाई गई हैं।
- डिजिटल मानचित्रों के माध्यम से कंप्यूटर या मोबाइल का उपयोग करके किसी विशिष्ट स्थान के लिए भूजल संभावनाओं के बारे में बिना वहां गए ही विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है।
- किसान अपने खेतों में सिंचाई के लिए सबसे उपयुक्त स्थान ढूंढने हेतु डिजिटल भूजल मानचित्रों का उपयोग कर सकते हैं।
- इस मानचित्र की मदद से हम बोरवेल या ट्यूबवेल बनाने के लिए सटीक जगह चिन्हित कर सकते हैं।
- जिन स्थानों पर भूजल का अत्यधिक दोहन हो रहा है। उन स्थानों को इस मानचित्र के माध्यम से चिन्हित करके संरक्षित रूप से भूजल का उपयोग किया जा सकता है।
- ये मानचित्र जलभृत मानचित्रण के लिए अच्छे इनपुट साबित होंगे।
- अति निम्न भूजल संभावित क्षेत्रों में भूजल का अत्यधिक दोहन करने पर रोक लगाई जा सकेगी।
- इसके साथ ही जल संकटग्रस्त क्षेत्रों की पहचान करके उन जगहों पर भूजल स्तर में सुधार हेतु उपयुक्त पुनर्भरण संरचनाओं का सटीक निर्धारण भी किया जा सकता है। ■

ट्राइकोडर्मा विरिडी से फसलों में रोग प्रबंधन

राधिका शर्मा[1] और **जगमोहन सिंह ढिल्लों**[2]

"ट्राइकोडर्मा विरिडी को जैविक खेती में रोग प्रबंधन के लिए एक महत्वपूर्ण जैव-नियंत्रक कवक के रूप में मान्यता प्राप्त है। यह प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होने वाला कवक किसानों को रसायन पर निर्भरता कम करने में मदद करता है। वहीं रसायनों के प्रयोग से कई जोखिम होते हैं, जैसे कि लाभकारी कवक का नष्ट होना, रोगजनकों में रसायन से प्रतिरोधक क्षमता का विकास और पर्यावरण को नुकसान आदि। ट्राइकोडर्मा विरिडी जैव कवक मृदा में पाए जाने वाले रोगजनकों जैसे कि राइजोक्टोनिया, पिथियम और फ्यूजेरियम को नियंत्रित करने में प्रभावी होता है और पौधों की वृद्धि में सुधार करता है। यह कवक विभिन्न एंजाइमों का उत्पादन करता है, जो रोग कारकों पर आक्रमण करते हैं और पौधों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। इसके अलावा, ट्राइकोडर्मा विरिडी पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता, पोषक तत्वों के अवशोषण और एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि को भी बढ़ावा देता है। ट्राइकोडर्मा का उपयोग जैविक खाद के रूप में भी किया जा सकता है, जो मृदा की उर्वराशक्ति को बढ़ाता है और जैविक खेती में सतत विकास को सुनिश्चित करता है। इस जैव-नियंत्रक का उपयोग न केवल खेती में सुरक्षित है, बल्कि यह दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता के लिए भी अनिवार्य घटक है, जो पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखते हुए खेती के लिए एक टिकाऊ दृष्टिकोण प्रदान करता है।"

कीटों और अन्य रोगजनकों को उनके प्राकृतिक, जैविक शत्रुओं का उपयोग करके नष्ट करने और नियंत्रित करने के प्राकृतिक तरीके को जैव नियंत्रण या जैविक नियंत्रण कहा जाता है। इसके लिए उपयोग किए जाने वाले एजेंटों को बायोकंट्रोल एजेंट कहा जाता है। रोगाणु इनमें से एक हैं। जैव नियंत्रण, एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन का महत्वपूर्ण अंग है। इस विधि में और उसके प्राकृतिक शत्रुओं के जीवनचक्र, आहार, मानव सतह, अन्य जीवों पर प्रभाव आदि का गहन अध्ययन करके प्रबंधन का निर्णय लिया जाता है।

[1]कृषि महाविद्यालय,[2]पादप रोग विज्ञान विभाग, सीसीएस हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार-125004 (हरियाणा);

जैविक नियंत्रण

कई किसान, कीट समस्याओं को नियंत्रित करने के लिए रासायनिक तरीकों का उपयोग करते हैं। इस विधि के निम्न नुकसान हैं:

- रसायन लाभकारी कीटों को मार सकते हैं।
- कीट कीटनाशकों से प्रतिरोधी हो सकते हैं।

ट्राइकोडर्मा और रोग नियंत्रण

ट्राइकोडर्मा मुख्यत: एक जैव कवक है। यह रोग उत्पन्न करने वाले फाइटोफ्थोरा, पाइथियम, फ्यूजेरियम, राइजोक्टोनिया, स्क्लेराशियम आदि मृदाजनित रोगजनकों की वृद्धि को रोककर अथवा उन्हें मारकर पौधों में होने वाले रोगों से सुरक्षा करता है। इसके अलावा यह सूत्रकृमि से होने वाले रोगों से भी पौधों की रक्षा करता है। यह कवक मुख्यत: दो प्रकार से रोगकारकों की वृद्धि को रोकता है-प्रथम, यह विशेष प्रकार के प्रतिजैविक रसायनों का संश्लेषण और उत्सर्जन करता है, जो रोगकारक जीवों के लिए विष का काम करता है। दूसरा, यह प्रकृति में रोगकारकों पर सीधा आक्रमण कर उन्हें अपना आहार बना लेता है या उन्हें अपने विशेष एंजाइम जैसे काइटिनेज, β-1,3-ग्लूकेनेस द्वारा तोड़ देता है। इस प्रकार रोगकारक जीवों की संख्या तथा उनसे होने वाले प्रतिकूल प्रभाव को कम करके पौधों की रक्षा करता है। यह पौधों में उपस्थित रोगरोधी जींस को सक्रिय कर पौधों को रोगकारकों से लड़ने की आंतरिक क्षमता का भी विकास करता है।

- कीटनाशक खाद्य श्रृंखलाओं में प्रवेश कर सकते हैं, जमा हो सकते हैं और अन्य जीवों को नुकसान पहुंचा सकते हैं।
- रासायनिक अवशेष किसानों को नुकसान पहुंचा सकते हैं।

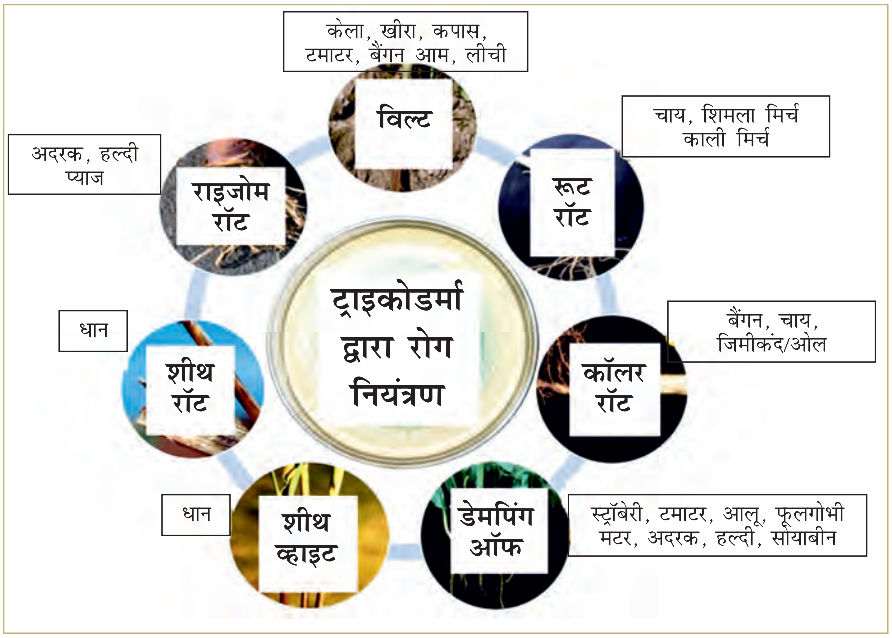

ट्राइकोडर्मा के इस्तेमाल से नियंत्रित रोग

- इसके विपरीत, जैविक नियंत्रण विधियों का विकास हुआ है। यह एक कीट नियंत्रण विधि है जो कीटों की संख्या को निचले स्तर तक कम करने के लिए अन्य कीटों का उपयोग करती है, जहां न्यूनतम आर्थिक क्षति होती है।
- टी. विरिडी एक फफूंद है, जो विभिन्न प्रकार के एंजाइमों का उत्पादन कर सकता है। इसमें सेल्यूलोज और काइटिनेज शामिल हैं जो क्रमश: सेल्यूलोज और काइटिन को विघटित कर सकते हैं। फफूंद सीधे लकड़ी पर बढ़ सकती है, जो ज्यादातर सेल्यूलोज से बनी होती है। कवक पर, जिसकी कोशिका भित्ति मुख्य रूप से काइटिन से बनी होती है। यह उत्पादित मशरूम सहित अन्य कवक के माइसीलिया और फलने वाले निकायों पर परजीवी होती है। इसे 'मशरूम का हरा मोल्ड रोग' कहा जाता है। ट्राइकोडर्मा विरिडी का एक प्रकार तपनस नाइग्रा के पौधों के मरने का एक ज्ञात कारण है।

ट्राइकोडर्मा की संरचना तथा प्राकृतिक विकास

ट्राइकोडर्मा पौधों के जड़-तंत्र क्षेत्र में यह खामोशी से कार्य करने वाला सूक्ष्मजीव है। यह एक गैररोगकारक मृदा-परजीवी कवक

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग से लाभ

- यह रोगकारक जीवों की वृद्धि को रोकता है या उन्हें मारकर पौधों को रोग मुक्त करता है। यह पौधों की रासायनिक प्रक्रियाओं को परिवर्तित कर पौधों में रोगरोधी क्षमता को बढ़ाता है। अत: इसके प्रयोग से रासायनिक दवाइयों, विशेषकर फंगीसाइड्स पर निर्भरता कम होती है।
- यह पौधों में रोगकारकों के विरुद्ध अंतर्ग्रहणीय प्रतिरोधक क्षमता की क्रियाविधि को सक्रिय करता है।
- यह मृदा में कार्बनिक पदार्थों के अपघटन की दर बढ़ाता है। अत: यह जैव उर्वरक की तरह काम करता है।
- यह पौधों में एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि को बढ़ाता है। टमाटर के पौधों में यह देखा गया कि जहां मृदा में ट्राइकोडर्मा डाला गया, उन पौधों के फलों की पोषक तत्वों की गुणवत्ता, खनिज तत्व और एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि अधिक पाई गई।
- यह पौधों की वृद्धि को बढ़ाता है। यह फॉस्फेट और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों को घुलनशील बनाता है। इसके प्रयोग से घास और कई अन्य पौधों में गहरी जड़ों की संख्या में बढ़ोतरी देखी गई, जो उन्हें सूखे में भी बढ़ने की क्षमता प्रदान करता है।
- यह कीटनाशकों, शाकनाशकों से प्रदूषित मृदा के जैविक उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इनमें विभिन्न प्रकार के कीटनाशक जैसे ऑर्गेनोक्लोरीन, ऑर्गेनोफॉस्फेट और कार्बामेट समूह के कीटनाशकों को नष्ट करने की क्षमता होती है।

उपयोगी

टी. विरिडी को पौधे के रोगजनक कवक के विरुद्ध जैविक नियंत्रण के रूप में उपयोगी पाया गया है। इसे *राइजोक्टोनिया, पाइथियम* और यहां तक कि *अल्टरनेरिया* जैसे रोगजनकों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रभावी पाया गया है। यह कवक मृदा में स्वाभाविक रूप से पाया जाता है और *राइजोक्टोनिया सोलन मैक्रोफोनिया फेसियोलिना* और *फ्यूजेरियम* प्रजातियों सहित बीज और मृदाजनित रोगों के नियंत्रण में बीज उपचार के रूप में प्रभावी है। जब इसे बीज के साथ ही लगाया जाता है, तो यह बीज की सतह पर उपनिवेश बना लेता है, जो न केवल क्यूटिकल पर मौजूद रोगजनकों को नष्ट करता है, बल्कि मृदाजनित रोगजनकों से भी सुरक्षा प्रदान करता है।

है जो प्राय: कार्बनिक अवशेषों पर पाया जाता है। इसकी दो प्रजातियां विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं-ट्राइकोडर्मा विरिडी और ट्राइकोडर्मा हर्जिनियम। यह कवक बहुत ही महत्वपूर्ण और कृषि की दृष्टि से उपयोगी है। यह एक जैव-कवक है और विभिन्न प्रकार के फफूंदजनित रोगों को रोकने में मदद करता है। इससे रासायनिक कवक पर निर्भरता कम हो जाती है। इसका प्रयोग प्रमुख रूप से पौधों पर रोगकारक जीवों की रोकथाम के लिए किया जाता है। इसका प्रयोग प्राकृतिक रूप से सुरक्षित माना जाता है। इसके उपयोग से प्रकृति में कोई प्रतिकूल प्रभाव देखने को नहीं मिलता है।

प्रयोग विधि

ट्राइकोडर्मा का प्रयोग विभिन्न तरीकों द्वारा किया जा सकता है:

- **बीजोपचार:** बीजोपचार के लिए प्रति कि.ग्रा. बीज में 5-10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर (फार्मूलेशन) जिसमें 2×10^6 सीएफयू प्रति ग्राम हो, को मिश्रित कर छांव में सुखा लें, फिर बुआई करें।
- **कंद उपचार:** 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति लीटर पानी में घोल बना लें। फिर इस घोल में कंद (बल्ब) को 30 मिनट तक डुबोकर रखें। इसे छाया में आधा घंटा रखने के बाद बुआई करें।
- **सीड प्राइमिंग:** बीज बोने से पहले खास प्रकार के घोल में बीजों को भिगोकर छांव में सुखाने की प्रक्रिया को 'सीड प्राइमिंग' कहा जाता है। ट्राइकोडर्मा से सीड प्राइमिंग करने हेतु सबसे पहले गाय के गोबर का गारा (स्लरी) बनायें। प्रति लीटर गारे में 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा उत्पाद मिलाएं और इसमें लगभग एक कि.ग्रा. बीज डुबोकर रखें, इसे बाहर निकालकर छाया में थोड़ी देर सूखने दें, फिर बुआई करें। यह प्रक्रिया खासकर अनाज, दाल और तिलहन फसलों की बुआई से पहले करनी उपयुक्त होती है।
- एक कि.ग्रा. ट्राइकोडर्मा पाउडर को 25 कि.ग्रा. कंपोस्ट (गोबर की सड़ी खाद) में मिलाकर एक सप्ताह तक छायादार स्थान पर रखकर उसे गीले बोरे से ढकें, ताकि इसके बीजाणु अंकुरित हो जाएं। इस कंपोस्ट को एक एकड़ खेत में फैलाकर मृदा में मिला दें फिर बुआई/रोपाई करें।
- **नर्सरी उपचार:** बुआई से पहले 5 ग्राम ट्राइकोडर्मा उत्पाद प्रति लीटर पानी में घोलकर नर्सरी क्यारी को भिगोएं।
- **कलम और अंकुरित पौधों का जड़ शोधन:** एक लीटर पानी में 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा घोलकर कलम एवं अंकुरित पौधों की जड़ों को 10 मिनट के लिए घोल में डुबोकर रखें, फिर रोपण करें। प्रति लीटर पानी में 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर को घोलकर पौधों की जड़ क्षेत्र को भिगोएं।
- **पौधों पर छिड़काव:** कुछ खास तरह के रोगों जैसे-पर्ण चित्ती, झुलसा आदि की रोकथाम के लिए पौधों में रोग के लक्षण दिखाई देने पर 5-10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

सिफारिशें

- ट्राइकोडर्मा मिश्रण/फार्मूलेशन को उचित और प्रमाणित संस्था अथवा कंपनी से ही खरीदें।
- मिश्रण/फार्मूलेशन 6 महीने से ज्यादा पुराना न हो।
- बीज, पौध उपचार का कार्य छायादार और सूखे स्थान पर करें।
- ट्राइकोडर्मा के साथ-साथ फंगीसाइड रसायनों का प्रयोग न करें।
- ट्राइकोडर्मा के प्रयोग के 4-5 दिनों बाद तक रासायनिक फंगीसाइड का प्रयोग न करें।
- सूखी मृदा में ट्राइकोडर्मा का प्रयोग न करें। नमी इसके विकास और जीवित रहने के लिए एक अनिवार्य पहलू है।
- ट्राइकोडर्मा उपचारित बीजों को सीधी सूर्य की किरणें न लगने दें।
- कार्बनिक खाद में मिलाने के बाद इसे लंबे समय के लिए न रखें।

ट्राइकोडर्मा संवर्धन विधि

इस विधि से किसान एक व्यावसायिक उत्पाद की छोटी मात्रा से पर्याप्त मात्रा अपने स्तर पर बनाकर न केवल बड़े क्षेत्र में प्रयोग कर सकते हैं, बल्कि अपने ही स्तर पर इसे गुणित कर ज्यादा से ज्यादा फसलों में भी प्रयोग कर सकते हैं। ध्यान रखें कि यह लंबे समय के लिए न करें। 100 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, वर्मीकंपोस्ट या नीम की खली में इसे किसी छायादार शेड में फैलाकर रखें। फिर इसके ऊपर एक कि.ग्रा. ट्राइकोडर्मा उत्पाद का छिड़काव करें और कुदाल या फावड़े से अच्छी तरह मिलाएं। अगर ये सूखी लगे, तो हल्के पानी के छींटे दें।

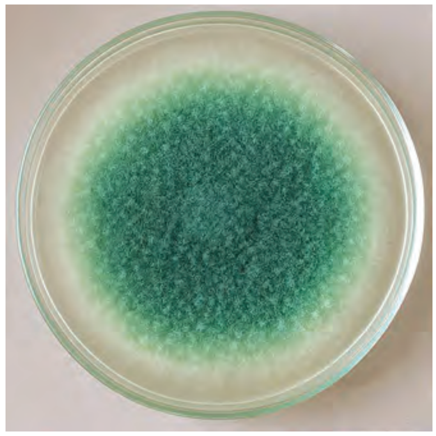

ट्राइकोडर्मा विरिडी की प्रयोगशाला में वृद्धि

इसके बाद इसे पॉलीथीन से ढक दें। प्रत्येक 7 दिनों के अंतराल पर मिश्रण को मिलाएं। लगभग 20 दिनों में खाद ट्राइकोडर्मा संवर्धित हो जाएगी, जिसे खेतों में विस्थापित कर अथवा गड्ढों में डालकर फसल लगाएं। बागवानी पौधों जैसे आम, लीची आदि में रिंग बेसिन बनाकर संवर्धित खाद को डाला जा सकता है।

ट्राइकोडर्मा की संगतता

यह जैविक/कार्बनिक खाद और अन्य बायोफर्टिलाइजर जैसे राइजोबियम, एजोस्पिरिलम, बैसिलस सबटिलिस एवं फॉस्फोबैक्टरिया के साथ संगत होता है। ट्राइकोडर्मा रासायनिक फंगीसाइड मेटालैक्जिल और थीरम द्वारा उपचारित बीज के साथ प्रयोग किया जा सकता है पर अन्य किसी भी रासायनिक फंगीसाइड के साथ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता।

ट्राइकोडर्मा उत्पाद की गुणवत्ता मानक

- कॉलोनी फॉर्मिंग यूनिट कम से कम 2×10^6 प्रति ग्राम या मि.ली.।
- लक्ष्य सूक्ष्मजीव पर निरोधी मारक क्षमता।
- उत्पाद में नमी की मात्रा 8 प्रतिशत, पी-एच 7।
- प्रयोग करने की उपयुक्त अंतिम तिथि कम से कम 6 महीने।
- मानव और अन्य माइक्रोबियल सूक्ष्मजीवों की संख्या की अधिकतम स्वीकृत सीमा -2×10^6 प्रति ग्राम या मि.ली.।

ट्राइकोडर्मा उत्पाद का भंडारण

ट्राइकोडर्मा एक कवक है, अत: सामान्यतया से तीन-चार महीने तक इसकी संख्या में विशेष कमी नहीं आती है, पर समय बढ़ने के साथ इसकी प्रति ग्राम संख्या कम होने लगती है। इससे इसकी गुणवत्ता पर बहुत असर आता है, इसलिए पैकेट को अधिक दिनों तक रखने के लिए 8 से 10 डिग्री सेल्सियस तापमान पर संग्रहित करना चाहिए।

फसलों का लू से बचाव

अनन्ता वशिष्ठ, मोनिका कुंडू, पी. कृष्णान और **सुभाष नटराज पिल्लई**

"लू एक गर्म और शुष्क हवा होती है, जो विशेष रूप से गर्मियों के मौसम में उत्तर-पश्चिमी भारत (राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, दिल्ली, बिहार, झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात आदि) के कई हिस्सों में चलती है। यह वातावरण में तापमान के सामान्य से (4.5 से 6.4 डिग्री सेल्सियस) अधिक बढ़ जाने के कारण उत्पन्न होती है। यह गर्मियों में अप्रैल से जून के बीच चलती है। यह हवा दिन के समय तेज गति से चलती है और इसके संपर्क में आने से हीट स्ट्रोक (लू लगना), अत्यधिक पसीना आना, पानी की कमी, थकावट, चक्कर आना, बेहोशी आना जैसी स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं। यह तीव्र गर्म एवं शुष्क हवा मनुष्य के अलावा फसलों, पेड़ एवं पौधों को भी प्रभावित करती है। यह पत्तियों की झुलसन, फूलों का झड़ना, फल विकास में रुकावट और मृदा में नमी की तेजी से हानि का कारण बनती है। इसमें गेहूं, मक्का, सब्जियां एवं फल फसलें विशेष रूप से प्रभावित होती हैं। इस प्रकार लू का फसलों पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जिसका उचित प्रबंधन अति आवश्यक है।"

लू (हीट वेव) का फसलों पर बहुत नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, खासकर तब जब यह लंबे समय तक चले और समय पर बारिश न हो। यह फसलों की उत्पादकता, गुणवत्ता और जल प्रबंधन को प्रभावित करती है।

पौधों में जल तनाव

- लू के दौरान अत्यधिक गर्मी और कम नमी के कारण पौधे तेजी से पानी खोते हैं।
- पत्तियां मुरझाने लगती हैं।
- पौधों में लू लगने से उनकी वृद्धि रुक जाती है। इसके अलावा अधिक लू लगने की वजह से पेड़-पौधे मर भी सकते हैं।
- सब्जियां झुलस जाती हैं, आकार और स्वाद पर असर पड़ता है।

फूल और फल झड़ना

- लू के ताप से फूल समय से पहले गिर सकते हैं, जिससे फल नहीं बनते।
- फल बनने पर भी उनका आकार छोटा होता है और गुणवत्ता कमजोर हो सकती है।
- कई बार अधिक तापमान से फसलें समय से पहले पक जाती हैं, जिससे उपज और गुणवत्ता घटती है।
- पकने के समय अधिक गर्मी उपज घटा देती है

बीज अंकुरण में बाधा

- अधिक गर्मी और लू बीजों के अंकुरण में रुकावट उत्पन्न करते हैं।
- बीज की रोपाई या अंकुरण रुक जाता है।

सिंचाई लागत में वृद्धि

- मृदा तेजी से सूखती है, जिससे

कृषि भौतिकी विभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

बार-बार सिंचाई करनी पड़ती है।

- इससे नल कूपों या बिजली पर निर्भरता और खर्च बढ़ जाता है।

बचाव

जायद काल (मार्च से जून) में फसलें तेज गर्मी और लू (गर्म और शुष्क हवाओं) से बहुत प्रभावित होती हैं। फसलों को बचाने के लिए निम्न उपाय करने चाहिए:

- बढ़ते तापमान को देखते हुए अधिक गर्मी और लू बढ़ने की आशंका देखते हुए किसान अपनी जायद फसलों की नियमित रूप से सिंचाई करते रहें। किसान जायद फसलों में सब्जियों की देखभाल करें और उनकी सिंचाई समय-समय पर करते रहें। फल बगीचों में पौधों की नियमित सिंचाई करते रहें। नर्सरी वाले पौधों को लू से बचाव के लिए हवा अवरोधकों का प्रयोग करें।
- **अंतरवर्ती सिंचाई:** निरंतर हल्की सिंचाई से तापमान और सूखापन कम किया जा सकता है। मृदा में पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिए ड्रिप या स्प्रिंक्लर सिंचाई का उपयोग करना बेहतर साबित होगा।

समय पर सिंचाई करें

- गर्म हवाओं के समय खेत में नमी बनाए रखना बहुत जरूरी है।
- हल्की सिंचाई (फव्वारा या ड्रिप इरिगेशन) करें, ताकि जमीन की सतह पर नमी बनी रहे।

ड्रिप सिंचाई

- **सिंचाई समय:** दोपहर में सिंचाई करने से बचें, सुबह या शाम को पानी दें।
- दिन के समय पौधों की जड़ों में पानी देते हैं, तो गर्म भाप बनकर पौधों की जड़ों और पत्तियों को नुकसान पहुंचा सकता है और इससे पत्ते जल सकते हैं। इस प्रकार पानी देर रात या सुबह सूरज निकलने से पहले दें।

मल्चिंग

- मृदा की नमी को संरक्षित करने और मृदा के तापमान को कम करने के लिए मल्च का उपयोग कर सकते हैं। मृदा को पुआल या पत्तियों से ढकें, जिससे नमी बनी रहे। फसलों के आसपास सूखे पत्ते, घास बिछाकर मल्चिंग करने से मृदा में नमी सुरक्षित रहती है और तापमान भी कम होता है।
- **शेड नेट्स:** सब्जियों या नर्सरी पौधों, फूलों की फसलों के लिए छायादार जाल का प्रयोग करें।
- **शेल्टर बेल्ट्स का प्रयोग:** वृक्षों की पंक्तियों से भी खेत में तापमान नियंत्रित किया जा सकता है। शेल्टर बेल्ट्स में लंबी पंक्तियों में वृक्ष या झाड़ियां खेतों या खुले इलाकों की सीमाओं पर लगाई जाती हैं। पंक्तियां हवा की विपरीत दिशा के अनुरूप लगाएं। इसके निम्न कारण हैं:
- **तेज हवाओं को रोका जा सके:** विशेषकर सूखी या रेतीली हवाएं, जो मृदा को उड़ाकर ले जाती हैं (मृदा का कटाव रोकना)।
- **फसलों की रक्षा करना:** तेज हवा, धूल या रेत से फसलें प्रभावित होती हैं, उन्हें ढाल प्रदान करते हैं।
- **माइक्रोक्लाइमेट सुधारना:** पेड़ तापमान, नमी और हवा की दिशा को नियंत्रित करके छोटे स्तर पर वातावरण को बेहतर बनाते हैं।
- **विंड ब्रेकर (हरी पट्टियां) का प्रयोग:** यह एक ऐसी संरचना होती है, जिसमें एक या अधिक पंक्तियों में

फसलों में मल्चिंग का प्रयोग

फसल बचाव का उन्नत प्रबंधन जरूरी

पेड़, झाड़ियां लगाए जाते हैं, ताकि तेज हवा की गति को कम किया जा सके और आसपास के क्षेत्र, जैसे-खेत, घर या पशुपालन स्थल, को गर्म हवा/लू से सुरक्षा मिल सके। आमतौर पर 1-3 पंक्तियों में पेड़ लगाए जाते हैं। पंक्तियां हवा की दिशा के विरुद्ध होती हैं। विंड ब्रेकर के निम्न लाभ हैं:

- मृदा के कटाव को रोकते हैं।
- पशुपालन क्षेत्रों में सर्द हवाओं से सुरक्षा देते हैं।
- छोटे स्तर पर स्थानीय जलवायु को नियंत्रित करते हैं।
- **फसल का सही चयन करें:** जायद के मौसम के लिए गर्मी सहनशील किस्में जैसे मूंग, उड़द, सूरजमुखी, बाजरा, तरबूज, खरबूजा आदि का चयन करें।
- **ताप सहनशील किस्में:** गर्मी प्रतिरोधी सब्जियों की किस्मों का चयन करें। गर्मी सहिष्णु किस्मों का रोपण समय पर करना आवश्यक है। इसके साथ ही हीट वेव (लू) अवधि से बचने के लिए रोपण कार्यक्रम को समायोजित करना चाहिए।
- जल प्रतिधारण में सुधार और तापमान में उतार-चढ़ाव को कम करने के लिए मृदा के कार्बनिक पदार्थ को बढ़ाना चाहिए।
- बढ़ते तापमान से फसलों को बचाने के लिए 2 प्रतिशत नेफ्थलीन एसिटिक एसिड (एनएए) का घोल खड़ी फसलों पर छिड़काव करें, ताकि फलों का विकास अवरुद्ध न हो।

फसलों के लिए छायादार जाल का प्रयोग

लू (हीट वेव) के प्रमुख कारण

- **उच्च वायुमंडलीय दबाव प्रणाली/उच्च दाब प्रणाली:** यह एक ऐसी वायुमंडलीय स्थिति है, जिसमें किसी क्षेत्र में हवा का दबाव उसके चारों ओर के क्षेत्रों की तुलना में अधिक होता है। लू (हीट वेव) में उच्च वायुमंडलीय दबाव प्रणाली का बहुत योगदान है। जब कोई उच्च दाब प्रणाली किसी क्षेत्र पर कई दिनों तक बनी रहती है, तो वह सूर्य की सीधी किरणों को धरती पर आने देती है। इससे सतह की गर्मी वातावरण में नहीं जा पाती। नमी की कमी के कारण वाष्पीकरण कम होता है और ठंडक नहीं मिलती। इस प्रकार, यह प्रणाली लू (हीट वेव) को लंबे समय तक बनाए रखने में मुख्य भूमिका निभाती है। उच्च वायुमंडलीय दबाव प्रणाली की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं :
- **हवा का नीचे से ऊपर की ओर कम उठना:** इस प्रणाली में हवा ऊपर से नीचे की ओर चलती है, जिससे बादल बनने की प्रक्रिया रुक जाती है।
- **आसमान साफ और मौसम शुष्क:** बादल नहीं बनने के कारण बारिश नहीं होती, जिससे वातावरण अधिक गर्म और सूखा हो जाता है।
- **तेज धूप और गर्मी में बढ़ोतरी:** हवा के नीचे उतरने से सतह गर्म होती रहती है और गर्मी की लहर की स्थिति बनती है।
- **स्थिर और ठहरी हुई हवा:** हवा की गति धीमी होने से गर्म हवा क्षेत्र में स्थिर रहती है, जिससे तापमान लगातार बढ़ता है।
- **जलवायु परिवर्तन:** वैश्विक तापमान में वृद्धि के कारण धरती की सतह अधिक गर्म हो रही है। ग्रीनहाउस गैसों की अत्यधिक मात्रा वातावरण को गर्म कर रही है।
- **वनों की कटाई:** वृक्षों की कमी से वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि होती है। हरियाली की कमी से छाया और नमी घटती है, जिससे गर्मी बढ़ती है।
- **शहरीकरण और कंक्रीट संरचनाएं:** शहरों में अधिक कंक्रीट और पक्की सतहें गर्मी को सोखकर देर तक छोड़ती हैं। इसे शहरी ऊष्मा द्वीप प्रभाव कहा जाता है।
- **औद्योगिकीकरण और प्रदूषण:** फैक्ट्रियों और वाहनों से निकलने वाली ग्रीनहाउस गैसें तापमान बढ़ाती हैं। वायुमंडलीय प्रदूषण सूरज की गर्मी को धरती पर रोके रखता है।
- **मृदा की नमी में कमी:** सिंचाई और वर्षा की कमी से जमीन की नमी घटती है, जिससे सतह जल्दी गर्म हो जाती है।

- **उर्वरकों और पोषक तत्वों का सही प्रयोग:** पोटाशयुक्त उर्वरकों का उपयोग करें। यह पौधों की गर्मी सहने की क्षमता बढ़ाता है।
- **प्राकृतिक खाद का प्रयोग:** अगर आप पौधों में फर्टिलाइजर हेतु प्राकृतिक खाद, गोबर खाद, जैविक खाद का प्रयोग करें। इससे पौधे मजबूत बनते हैं। यूरिया के प्रयोग से गर्मी में पौधे के झुलसने की आशंका रहती है। खाद के रूप में पौधों की पत्तियां आदि भी इस्तेमाल कर सकते हैं।
- **बड़े वृक्षों के नीचे:** अगर नए और छोटे पौधे लगाएं हैं, तो इन्हें बड़े वृक्ष या पौधों की छांव में रख दें। इससे इनको छाव मिलती रहेगी।
- **रोग एवं कीट प्रबंधन:** गर्मी और नमी की कमी से फसलों पर कीट और रोग तेजी से फैल सकते हैं। जैविक या रासायनिक तरीके से समय-समय पर कीट नियंत्रण करना जरूरी है।
- पेड़-पौधों को गर्मी से बचाने के लिए उन्हें रोज पानी दें। इस बात का विशेष ध्यान रखें कि पौधों की मृदा न सूखे। इसके अलावा गर्मियों के मौसम में पेड़-पौधों को खुली धूप में न रखें। इससे पौधे की पत्तियां जल सकती हैं और ये नष्ट भी हो सकते हैं।
- अगर तापमान तेजी से बढ़ रहा है, तो पौधों को गीले पेपर, कपड़े या कॉटन से ढककर रखें और पानी देते रहें। इससे पौधों को नमी और हवा दोनों मिलती रहेगी। पौधों को पर्याप्त मात्रा में पोषण दें। इससे पौधों की वृद्धि नहीं रुकेगी।

जून के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, अंजली पटेल, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय और एस.एस. राठौर

"देश में कृषि, सदियों से गांवों में बसे हुये लोगों के जीवन निर्वाह का सहारा तथा परम्परागत व्यवसाय रहा है। भारत में खेती वर्षा आधारित होने के कारण औसत उत्पादकता अभी विश्व की औसत उत्पादकता से बहुत कम है। धान, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि मानसून फसलों की खेती का इस खाद्यान्न उत्पादन में आधे से भी अधिक का योगदान है और ये सभी फसलें मानसून के आगमन पर निर्भर करती हैं। सघन खेती के अलावा बारानी खेती का उचित प्रबंधन करना बहुत ही आवश्यक है। इसके अन्तर्गत खरीफ फसलों जैसे-ज्वार, बाजरा, मक्का, मूंग, उड़द, अरहर, ग्वार, मोठ, तिल आदि फसलों की कम सिंचाई वाली उन्नत प्रजातियों का चयन बहुत ही महत्वपूर्ण है। उचित समय पर बुआई, क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई, बूंद-बूंद पानी का दक्ष उपयोग, पूसा हाइड्रोजेल प्रयोग द्वारा कम पानी में फसल प्रबंधन, वाष्पीकरण कम करने हेतु पलवारों (मल्चिंग) का प्रयोग आदि कृषि क्रियाएं वर्षा आधारित क्षेत्रों एवं सीमित जल से अधिक पैदावार लेना अब समय की मांग बन गया है। किसानों को वैज्ञानिक तरीके अपनाकर फसलों की जल उपयोग दक्षता बढ़ाने पर ध्यान देना होगा। अधिक बारिश के पानी का ज्यादातर हिस्सा खेती के प्रयोग में नहीं आ पाता और नालियों में बहकर व्यर्थ चला जाता है। ऐसे में जल संचयन तकनीकें अपनाना आवश्यक है। इसके लिए खेत के ही एक हिस्से में छोटा सा जल संग्रहण तालाब बनाएं, ताकि वर्षा जल सूखा काल के दौरान सिंचाई के लिए खेत में संचित रहे। इस प्रकार गांव का पानी गांव में, खेत का पानी खेत में ही रहे, तो सिंचाई की जरूरत काफी हद तक पूरी हो सकती है। दलहन और तिलहन उत्पादन का लगभग 80 प्रतिशत से अधिक हिस्सा इसी भूमि पर निर्भर करता है। हरित क्रांति के दौर में सिंचित भूमि का भरपूर दोहन हो चुका है। अब दूसरी क्रांति के लिए रास्ता केवल वर्षा पर आधारित बारानी खेती और जल प्रबंधन से होकर जाता है। दक्षिण-पश्चिम मानसून इस माह देश के विभिन्न हिस्सों में दस्तक देने लगता है।"

जून में कृषि के क्षेत्र में, खरीफ फसलों की बुआई के लिए तैयारियां शुरू हो जाती हैं। यह समय मानसून के आने से पहले या उसके तुरंत बाद होता है। जून में, धान की नर्सरी तैयार करना, चारा फसलों और रेशेदार फसलों की बुआई भी की जाती है। बारानी क्षेत्रों में ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी, मडुआ के साथ-साथ तिलहनी फसलें जैसे-सोयाबीन, मूंगफली, सूरजमुखी, तिल, कुसुम एवं अरण्डी, रेशेदार फसलें जैसे-कपास एवं जूट के साथ-साथ चारा फसलें जैसे-मक्का, ज्वार, बाजरा, लोबिया, ग्वार एवं लूसर्न आदि प्रमुख फसलों की बुआई के लिए प्रबंधन किये जाते हैं।

सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110 012

- मानसून आने के बाद तैयार पौध की

रोपाई जुलाई में की जाती है। इसके उन्नत सस्य क्रियाओं को अपनाना चाहिए, जिससे अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके। इस महीने में कृषि कार्यों के उचित प्रकार से पूर्ण करने के लिए मौसम आधारित कृषि परामर्श पर भी ध्यान देना चाहिए।

- मौसम में होने वाले बदलाव, खासकर मानसून के समय अस्थिर होने से खरीफ फसलों में अनुमानित नुकसान को कम करने के लिए आकस्मिक फसल योजना के लिए जरूरी संसाधनो जैसे-बीज का प्रबंधन भी अवश्य कर लेना चाहिए।

धान की नर्सरी

- **मृदा चयन एवं क्यारी की तैयारी:** धान की खेती के लिए अच्छी जलधारण क्षमता वाली चिकनी या मटियार मृदा 6.5 से 8.5 तक पी-एच मान वाली उपयुक्त होती है। स्वस्थ एवं रोगमुक्त पौध तैयार करने के लिए उचित जल-निकास एवं उच्च पोषक तत्वों युक्त दोमट मृदा, सिंचाई के स्रोत के पास नर्सरी का चयन करें।
- बुआई के एक महीने पहले नर्सरी की तैयारी की जाती है। नर्सरी क्षेत्र को गर्मियों में अच्छी तरह 3-4 बार हल से जुताई करके खेत को खाली छोड़ने से मृदा संबंधित रोगों में काफी कमी आती है। नर्सरी क्षेत्र को पानी से भरकर पलेवा लगाने के बाद पानी की पतली परत रखते हुए खेत को एक दिन के लिए ऐसे ही छोड़ दें।
- क्यारियों की उचित देखभाल के लिए 1.5-2.0 मीटर चौड़ाई तथा 8-10 मीटर लम्बाई रखनी चाहिए। विभिन्न किस्मों के लिए नर्सरी बनाते समय विभिन्न प्रजातियों की मिलावट से बचने के लिए दो प्रजातियों के बीच नर्सरी क्यारियों का फासला 1.5-2.0 मीटर होना चाहिए।
- **मृदा शोधन:** मृदाजनित रोग एवं कीटों के नियंत्रण हेतु ट्राइकोडर्मा, ब्यूवेरिया बैसियाना जैव कीटनाशी की 2.5-3.0 कि.ग्रा. मात्रा अथवा क्लोरोपायरीफॉस 20 प्रतिशत ईसी 2.5-3.0 लीटर प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए, जिससे बीज एवं मृदाजनित रोगों से बचाव होता है एवं बीज का जमाव प्रतिशत भी बढ़ जाता है।

पूसा बासमती धान 1885

- **बीजदर एवं बीजोपचार:** बीज का चयन सावधानीपूर्वक करें। इसके लिए आधारीय एवं प्रमाणित बीजों का ही प्रयोग करें। इसमें पूर्ण जमाव-पंक्ति, प्रजातियों की शुद्धता एवं स्वस्थ होने की प्रमाणिकता होती है। सामान्यत: मोटे दानों वाली किस्मों के लिए 30-35 कि.ग्रा. एवं बासमती के लिए 20-25 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। एक हैक्टर रोपाई के लिए 500 वर्ग मीटर पौध क्षेत्र पर्याप्त होता है।
- बीज द्वारा फैलने वाले फफूंद एवं जीवाणुजनित रोगों के नियंत्रण के लिए 5.0 ग्राम इमिसान या 10.0 ग्राम बाविस्टीन और 2.5 ग्राम पोसामाइसिन या 1.0 ग्राम स्टैप्टोसाइक्लीन या 2.5 ग्राम एग्रीमाइसीन 10.0 लीटर पानी में घोल लें। इसके बाद 20-25 कि.ग्रा. छांटे हुए बीज को 25 लीटर उपरोक्त घोल में डुबोकर 24 घण्टे के लिए पानी में भिगोकर रख दें तथा 24-36 घंटे तक जमाव होने दें। बीच-बीच में पानी का छिड़काव करते रहें। इसके बाद पानी की पतली सतह के साथ संतृप्त से गारे वाली स्थिति बनाएं रखने के लिए नर्सरी क्यारियों के ऊपर अंकुरित बीजों को समान रूप से छिड़काव करें।
- जब तक नवपौध हरी न हो जाए, पक्षियों से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए विशेष सावधानी बरतें तथा शुरू के 2-3 दिनों तक अंकुरित बीजों को पुआल से ढके रहें। इस उपचार से जड़ गलन, झोंका एवं पत्ती का झुलसा रोग आदि रोगों के नियंत्रण में सहायता मिलती है। वैसे तो बुआई का समय किस्मों के ऊपर निर्भर करता है, परन्तु 15 मई से 25 जून तक का समय बुआई के लिए उपयुक्त है।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** नवपौध की अच्छी, स्वस्थ एवं ओजपूर्ण/पर्याप्त बढ़वार हेतु पोषण मिलना जरूरी है। इसके लिए 1000 वर्गमीटर क्षेत्र में 10 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद, 10 कि.ग्रा. डाइ-अमोनियम फॉस्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट जुताई से पहले मृदा में अच्छी तरह मिलाने के बाद बुआई करें। इसके 10-12 दिनों बाद यदि पौधों का रंग हल्का पीला हो जाए, तो एक सप्ताह के अन्तराल पर दो बार 10 कि.ग्रा. यूरिया/1000 मीटर^2 की दर से मृदा की ऊपरी सतह पर छिड़काव कर दें, जिससे पौध की बढ़वार अच्छी होगी।
- **खरपतवार प्रबंधन:** बुआई के 1-2 दिनों बाद पायराजोसल्फ्यूरॉन 250 ग्राम/हैक्टर की दर से पौध निकलने के पूर्व छिड़काव करें। इसके लिए शाकनाशी को रेत में (10-15 कि.ग्रा./1000 मीटर^2) मिलाकर उसे नर्सरी क्यारियों पर एक समान रूप से फैला दें तथा हल्का पानी (1-2 सें.मी.) क्यारियों में भरा रहने दें, जिससे खरपतवारनाशी एक समान क्यारियों में फैल जाएं।
- **रोपाई:** मध्यम एवं देर से पकने वाली प्रजातियों की रोपाई माह के प्रथम पखवाड़े तक पूरी कर लेनी चाहिए। धान की शीघ्र पकने वाली प्रजातियों की रोपाई जुलाई के दूसरे पखवाड़े तक

की जा सकती है। सुगंधित प्रजातियों की रोपाई माह के अन्त में प्रारम्भ करें। प्रत्येक वर्ष धान-गेहूं लेने वाले क्षेत्रों में हरी खाद या 100-120 क्विंटल/हैक्टर सड़ी गोबर की खाद का प्रयोग करें।

- **पौध रोपाई की उचित आयु एवं पौध उखाड़ना:** उचित आयु की पौध रोपाई से धान की बेहतर पैदावार होती है। इससे फसल की बढ़वार एवं फुटाव अच्छा होता है। यदि अधिक आयु की पौध खेत में लगाते हैं, तो फुटाव बहुत कम होता है। अच्छी पैदावार के लिए 20-25 दिनों की आयु में पौधे की रोपाई मुख्य खेत में कर दें। पौध को उखाड़ने के पहले दिन क्यारियों को अच्छी तरह सिंचाई करके पौध रोपण वाले दिन सुबह ही नवपौध को नर्सरी से कमजोर, रोगमुक्त तथा अन्य प्रजातियों की नवपौधों को अलग कर देना चाहिए।
- नवपौधों को किसी मुलायम सामग्री से 5-8 सें.मी. व्यास वाले सुविधाजनक बंडलों में बांध लेना चाहिए। पौधों को निकालते समय ध्यान रखें कि पौध की जड़ों को कम से कम नुकसान पहुंचे अन्यथा पौधों की बढ़वार एवं फुटाव पर प्रभाव पड़ता है। पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 20-30×15 सें.मी. होनी चाहिये। पौध की खेत में रोपाई 3 सें.मी. की गहराई पर करते हैं। एक जगह पर 2 से 3 पौधे ही लगायें। एक वर्गमीटर क्षेत्रफल में कम से कम 33 पौधे होने चाहिये।
- **किस्मों का चयन:** धान की पैदावार तथा उत्तम गुणवत्तायुक्त उत्पादन लेने के लिए अच्छी प्रजाति का चयन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसलिए जल साधन, फसलचक्र एवं बाजार की मांग की स्थिति को ध्यान में रखकर उपयुक्त प्रजाति का चयन करें।
- बासमती धान की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा बासमती 1847, पूसा बासमती 1885, पूसा बासमती 1886, पूसा बासमती 1692 एवं सुगन्धित धान की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा सुगंध-2, पूसा सुगंध-3, पूसा सुगंध 5, पन्त सुगंध 15, पन्त सुगंध धान 17, माही सुगंध एवं मोटे धान की उन्नत प्रजातियां जैसे-सीआर धान 308, सीआर धान 309, सीआर धान 312, सीआर धान 313 एवं ऊसर धान की उन्नत प्रजातियां जैसे-सीएसआर-10, नरेन्द्र ऊसर धान 2, सीएसआर-13, सीएसआर-27, नरेन्द्र ऊसर धान 3 एवं छोटे पतले धान की उन्नत प्रजातियां जैसे-डीआरआर धान 53, डीआरआर धान 54, डीआरआर धान 55, डीआरआर धान 56, डीआरआर धान 58 एवं धान की संकर किस्में जैसे-पीआरएच-10, कर्नाटक संकर धान 2, डीआरआरएच-3, अराइज 6444, अराइज 6201, अराइज 6741, अराइज तेज (एचआरआई 169) एवं धान की काला-नमक किस्में जैसे-पूसा नरेंद्र काला नमक 1638, पूसा नरेंद्र कला नमक 1652, बौना काला-नमक-101, बौना कालानमक-102 एवं के.एन.-3 आदि प्रमुख हैं।

धान की सीधी बुआई

- धान की सीधी बुआई या डीएसआर एक ऐसी तकनीक है, जिसमें धान के पौधे की बिना नर्सरी तैयार किए सीधे खेत में बुआई की जाती है। इस विधि में सबसे खास बात यह है, कि किसानों को धान की रोपाई में आने वाले खर्च और श्रम दोनों की बचत होती है। इस तकनीक से लागत में लगभग 6000 रुपये/एकड़ की कमी आती है। इस विधि में 30 प्रतिशत कम पानी का उपयोग होता है। रोपाई के दौरान, 4-5 सें.मी. पानी की गहराई को बनाए रखते हुए खेत को लगभग रोजाना सिंचित करना पड़ता है।

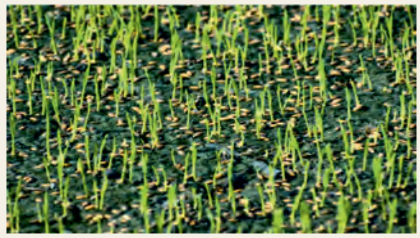

- धान को रोपाई, सूखा-डीएसआर और गीला-डीएसआर 3 प्रमुख तरीकों से स्थापित किया जा सकता है। ये विधि या तो भूमि की जुताई या फसल स्थापना विधि या दोनों में दूसरों से भिन्न होती हैं।
- **सूखी डीएसआर** विधि में धान को अलग-अलग तरीकों का उपयोग करके स्थापित किया जाता है। इसमें जीरो टिलेज या पारंपरिक जुताई के बाद बिना पके हुए, मृदा पर सूखे बीजों का प्रसारण, अच्छी तरह से तैयार खेत में डिबल्ड विधि और बाद में पंक्तियों में बीजों की ड्रिलिंग शामिल है।
- **गीला-डीएसआर** में पहले से अंकुरित बीजों को पोखर वाली मृदा पर बोना शामिल है। जब पहले से अंकुरित बीजों को पोखर वाली मृदा की सतह पर बोया जाता है, तो बीज का वातावरण ज्यादातर वायवीय एवं एरोबिक होता है। इसे एरोबिक गीला-डीएसआर के रूप में जाना जाता है। जब पहले से अंकुरित बीजों को पोखर वाली मृदा में बोया जाता है, तो बीज का वातावरण ज्यादातर अवायवीय होता है और इसे एनारोबिक गीला डीएसआर कहा जाता है। एरोबिक और एनारोबिक के तहत गीला-डीएसआर, बीजों को या तो प्रसारित किया जा सकता है या ड्रम सीडर 81 या अवायवीय सीडर के साथ फर्रो ओपनर का उपयोग करके बोया जा सकता है।
- सिंचित और वर्षा जल की कमी को देखते हुए एरोबिक धान की सम्भावनाएं देश के विभिन्न धान उगाने वाले क्षेत्रों में बढ़ती जा रही हैं। उपयुक्त किस्म का चयन एवं उन्नत सस्य क्रियाएं अपनाकर धान की सीधी बुआई से कठिन परिस्थितियों में भी अधिक उत्पादकता एवं लाभ कमाया जा सकता है। इस विधि में अधिक उपज देने वाली किस्मों को लेवरहित या अनपडल्ड दशा में देसी हल या सीड ड्रिल अथवा पैडीड्रम सीडर से सीधे खेत में बुआई करते हैं। इस विधि से धान की बुआई का उपयुक्त समय जून ही है। इस विधि में 25-30 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर को 25×10 सें.मी. की दूरी पर, खेत में पलेवा कर सीधी बुआई करते हैं। एरोबिक धान के लिए 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 60 कि.ग्रा. पोटाश के साथ 25-30 कि.ग्रा./हैक्टर जिंक सल्फेट की संस्तुति की जाती है।

- **खाद एवं उर्वरक की मात्रा:** धान की अधिक पैदावार के लिये एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एक महत्वपूर्ण उपाय है। इसमें रासायनिक उर्वरक, सूक्ष्म पोषक तत्व, जैविक उर्वरक, हरी-नीली शैवाल, गोबर की खाद एवं हरी खाद आदि का समुचित उपयोग किया जाता है। धान के उत्पादन में मुख्य पोषक तत्व नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं जिंक आदि महत्वपूर्ण हैं। इनकी भरपाई किसानों द्वारा रासायनिक उर्वरकों की मदद से की जाती है।
- अधिक पैदावार के लिए धान की फसल में उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। धान की बौनी प्रजातियों के लिये 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर की आवश्यकता होती है। बासमती की लम्बी किस्मों के लिए 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन पर्याप्त होती है। एसएसपी, एमओपी एवं जिंक की पूरी मात्रा आखिरी जुताई के समय देनी चाहिये।
- पौधा अच्छी तरह पकड़ बना लें तो यूरिया की एक तिहाई मात्रा रोपाई के पांच दिनों बाद समान रूप से छिड़क दें। दूसरी एक तिहाई मात्रा कल्ले फूटते समय रोपाई के 25-30 दिनों बाद तथा शेष एक तिहाई फूल आने से पहले 50-60 दिनों बाद खड़ी फसल में छिड़काव करें। यूरिया डालने के 24 घण्टे बाद ही पानी दें। यदि हरी खाद या गोबर की खाद का प्रयोग किया गया हो तो नाइट्रोजन की मात्रा 20-25 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से कम कर देनी चाहिये। अगर एसएसपी की जगह पर डीएपी का प्रयोग कर रहे हैं तो यूरिया की मात्रा 50 कि.ग्रा./हैक्टर कम कर दें।
- **नाइट्रोजन स्थिरीकरण:** नील हरित शैवाल एक प्रकार का संश्लेषण जीवाणु है, जिसे संश्लेषक नाइट्रोजन स्थिरीकरण एजेंट भी कहते हैं। नील हरित शैवाल की अधिकतर प्रजातियां नाइट्रोजन का मृदा में एकत्रीकरण करती हैं। नील हरित शैवाल के प्रयोग से लगभग प्रतिवर्ष/हैक्टर 20-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन मृदा में स्थापित होती है,

ग्रीष्मकालीन मक्का, ज्वार एवं बाजरा

- **मक्का:** मक्का के दाने के लिए कटाई तब करें, जब भुट्टों के ऊपर की पत्तियां सूखने लगें तथा दाना सख्त हो जाए। इस समय दानों में 25-30 प्रतिशत नमी रहती है। कटाई के बाद भुट्टों को एक सप्ताह के लिए धूप में सुखाएं तथा बाद में कॉर्नशेलर से दाने को भुट्टों से अलग कर दें। अधिक गुणवत्ता वाली बेबीकॉर्न के लिए इनकी तुड़ाई रेशा (सिल्क) निकलने के 2-3 दिनों के अंतराल पर ही करें। स्वीटकॉर्न में रेशा निकलने के लगभग 20-22 दिनों के बाद तुड़ाई के लिए उपयुक्त है। इस समय इनमें शर्करा की मात्रा सबसे अधिक होती है।

- **ज्वार:** जायद ज्वार की फसल में हरे चारे के लिए पहली कटाई बुआई के 50-60 दिनों बाद करनी चाहिये। इसके बाद प्रत्येक 30-35 दिनों बाद फसल काटने योग्य हो जाती है। इनमें कुल 3 कटाइयां प्राप्त की जा सकती हैं। यदि बीज इकट्ठा करना हो, तो एक बार से अधिक कटाई नहीं करनी चाहिये। पौष्टिक चारा प्राप्त करने हेतु कटाई फूल आने पर करनी चाहिये एवं लोबिया का हरा चारा लेने के लिए फली बनने की अवस्था में फसल कटाई के योग्य हो जाती है। यह अवस्था बुआई के 2-3 माह बाद आती है।
- **बाजरा:** आमतौर पर बाजरे की कटाई पौधों में फूल आने से पहले फसल को चारे के लिहाज से काटना सही रहता है। अगर किसी वजह से इस दौरान फसल न काट सकें तो 50 फीसदी फूल आने पर फसल जरूर काट लेनी चाहिए। बुआई के करीब 65-70 दिनों बाद फसल इस स्थिति में पहुंचती है।

सारणी 1. धान की फसल में रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण

रसायन	वास्तविक मात्रा कि.ग्रा..ली./हैक्टर	पानी की मात्रा लीटर/हैक्टर	छिड़काव करने का उपयुक्त समय
पेण्डिमेथिलीन 30 ई.सी.	3.0-4.0	600-800	रोपाई/बुआई के 1-2 दिनों के अन्दर
ब्यूटाक्लोर 50 ई.सी.	2.5-4.0	600-800	फसलें रोपने के 2-3 दिनों के बाद छिड़काव करें
ब्यूटाक्लोर 5 जी.	25.0-40.0	500-600	रोपाई/बुआई के 1-2 दिनों के अन्दर
थायो बेनकार्ब 50 ई.सी.	2.0-3.0	500-600	फसल रोपने के 3-4 दिनों बाद करें
एनिलोफॉस 30 ई.सी.	1.25-1.50	500-600	फसल रोपने के 3-4 दिनों बाद करें बासमती धान में इस दवा का प्रयोग न करें
प्रोटिलाक्लोर 50 ई.सी.	1.0-1.50	600-700	रोपाई/बुआई के 1-2 दिनों के अन्दर
पाइराजोसल्फ्यूरॉन ईथाईल 10 डब्लू.पी.	25 ग्राम	600-700	10 से 20 दिनों पर छिड़काव करें
बिस्पाइरिबैक सोडियम 10 एस.सी. (नोमिनी गोल्ड)	250 मि.ली.	600-700	20 से 30 दिनों पर छिड़काव करें
ईथोक्सीसल्फ्यूरॉन 15 डब्ल्यू.डी.जी.	30 ग्राम	600-700	20-25 दिनों बाद छिड़काव करें
साइहेलोफोप ब्यूटाईल 10 ई.सी.	75-80	600-700	10-20 दिनों बाद छिड़काव करें
एजिमसल्फ्यूरॉन 50 डी.एफ.	70	600-700	50-60 दिनों बाद छिड़काव करें

जिसका प्रयोग धान की फसल द्वारा होता है। 10-15 कि.ग्रा. टीके रोपाई के एक हफ्ते बाद खड़े पानी में प्रति हैक्टर की दर से छिड़क दें। शैवाल का प्रयोग कम से कम 3 वर्षों तक लगातार करें। शैवाल का प्रयोग कर रहे हों, तो इस बात का ध्यान रखें कि खेत में पानी सूखने न पाये। धान की फसल में एल्गी के साथ 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर देने पर अच्छी उपज प्राप्त होती है।

- **निराई, गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण:** लेहयुक्त धान की फसल में खरपतवारों की विशेष समस्या नहीं होती है। खरपतवार निकलने पर उन्हें उखाड़कर खेत में गहरा दबा देते हैं। सारणी 1 में दी गई दवाइयों में से किसी भी एक दवा का प्रयोग किया जा सकता है। धान में 47 से 86 प्रतिशत तक का नुकसान खरपतवारों द्वारा होता है। आजकल बहुत से खरपतवारनाशी बाजार में उपलब्ध हैं जिनका समय पर सही मात्रा में उपयोग कर खरपतवारों से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है।

नया अनुसंधान

जीनोम-फेरबदल किस्म

- हाल ही में भारत ने दुनिया का पहला जीनोम-फेरबदल धान जारी किया है। यह धान की ऐसी किस्म है, जो भारत के कृषि अनुसंधान और विकास को बढ़ावा देती है। ये नई किस्में पानी का कम इस्तेमाल करके ज्यादा उपज देती हैं। इसके साथ ही जलवायु से ज्यादा प्रभावित भी नहीं होती हैं।
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने दुनिया की पहली जीनोम-फेरबदल धान की दो किस्में, डीआरआर धान 100 (कमला) और पूसा डीएसटी राइस-1 विकसित की हैं। इन किस्मों को उगाने के लिए कम पानी की जरूरत होगी और ये जल्दी पककर तैयार हो जाएंगी। इतना ही नहीं इन किस्मों का उत्पादन भी पारंपरिक किस्मों के मुकाबले 20-30 प्रतिशत तक ज्यादा होगा। ये आधुनिक किस्में 19 प्रतिशत तक उपज में सुधार कर सकती हैं। इसके साथ ही पानी और उर्वरकों का कम इस्तेमाल भी करती हैं। इसके अलावा ये किस्में कम मीथेन उत्सर्जन के साथ कार्बन फुटप्रिंट को कम करने में भी योगदान देंगी।
- जलवायु संकट के युग में किसानों के लिए एक विकल्प के तौर पर इन्हें दक्षिण, मध्य और पूर्वी भारत में उगाया जा सकता है।
- जीनोम-फेरबदल 'कमला' किस्म को आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, तमिलनाडु, पुडुचेरी, केरल, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, ओडिशा, झारखंड, बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में खेती के लिए अनुशंसित किया गया है। वहीं, 'पूसा डीएसटी राइस 1' को भी इन राज्यों में उपयुक्त पाया गया है।

खरीफ मक्का, ज्वार, बाजरा और अन्य श्रीअन्न

- **मक्का** (देर से पकने वाली) की बुआई मध्य मई से मध्य जून तक पलेवा करके करनी चाहिए। जिससे वर्षा प्रारम्भ होने से पहले ही खेत में पौधे भलीभांति स्थापित हो जायें और बुआई के 15 दिनों के बाद एक निराई भी हो जाये। शीघ्र पकने वाली मक्का की बुआई जून के अन्तिम सप्ताह तक अवश्य कर लेनी चाहिए।
- खरीफ के मौसम में मक्का के लिए खेत की तैयारी हेतु, भूमि में हैरो से एक गहरी जुताई और 2-3 जुताई कल्टीवेटर से पर्याप्त रहती हैं। जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाएं, जिससे नमी सुरक्षित रहती है। मक्का की खेती के लिये दोमट मृदा से लेकर बलुई दोमट, गहरी, भारी गठन वाली मृदा, जिसमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा एवं उचित जल निकास की सुविधा हो, वह भूमि अच्छी मानी जाती है। लवणीय एवं क्षारीय मृदा मक्का की खेती के लिए उपयुक्त नहीं रहती।
- खरीफ मक्का की खेती के लिए परिपक्वता अवधि के आधार पर अधिक उपज देने वाली बहुत सी संकर प्रजातियां उपलब्ध हैं।

संकर मक्का

संकर बाजरा

- मक्का की जल्दी पकने वाली संकर प्रजातियां जैसे-पीईएचएम 2, पीईएचएम 3, पीईएचएम 5, विवेक संकर मक्का 4 आदि ये प्रजातियां 85-95 दिनों में पक जाती हैं। इन प्रजातियों को सिंचित एवं वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगाया जा सकता है।
- मक्का की पूर्णकालिक परिपक्वता की प्रजातियां जैसे-पूसा जवाहर संकर मक्का-1, गुजरात आनंद व्हाइट मक्का हाइब्रिड-2, एमएम 9344, पूसा एचएम-9 इम्प्रूव्ड, प्रताप मक्का-9, प्रताप कंचन-2, डब्ल्यूसी-236 आदि इस वर्ग की प्रजातियां 100-110 दिनों में पकती हैं। प्रोटीनयुक्त मक्का की प्रजातियां जैसे-एचक्यूपीएम 1, एचक्यूपीएम 4, एचक्यूपीएम 5, एचक्यूपीएम 7, विवेक क्यूपीएम 9, शक्तिमान 1 एवं शक्तिमान 3, शक्तिमान 4 आदि प्रमुख हैं। इन प्रजातियों को उन क्षेत्रों में बोना चाहिए, जहां पर सिंचाई देकर समय से बुआई हो सके तथा फसल काल में वर्षा सुनिश्चित हो।
- सभी राज्यों के लिए विशेष प्रकार की मक्का की किस्में जैसे बेबीकॉर्न के लिए पूसा संकर 2, पूसा संकर-3, एचएम-4ए बीएल-42 एवं जी-5414, पॉपकॉर्न के लिए पर्ल पॉपकॉर्न एवं अम्बर पॉपकॉर्न एवं स्वीटकॉर्न के लिए प्रिया एवं माधुरी आदि प्रमुख हैं।
- खरीफ मक्का में उचित संख्या 65000 से 78000 पौधे प्रति हैक्टर प्राप्त करने के लिए 20-25 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर की आवश्यकता पड़ती है। बीज उत्पादन के लिए पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 60-75×12-15 सें.मी. रखनी चाहिए एवं बीज 4-5 सें.मी. की गहराई पर बोना चाहिए।
- संकर बीज उत्पादन में संकर प्रजातियों

में नर एवं मादा के बीज क्रमशः 2 एवं 4 पंक्तियों में बोये जाते हैं। सामान्य स्थिति में बुआई हल के पीछे कूड़ों में 3.5 सें.मी. की गहराई पर करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी अगेती किस्मों के लिए 45 सें.मी. तथा मध्यम एवं देर से पकने वाली प्रजातियों में 60 सें.मी. होनी चाहिए। पौधे से पौधे की दूरी अगेती किस्मों में 20 सें.मी. एवं मध्यम एवं देर से पकने वाली प्रजातियों में 25 सें.मी. होनी चाहिए।

- **उर्वरक:** मक्का की भरपूर उपज लेने के लिए संतुलित उर्वरकों का प्रयोग उर्वरकों की मात्रा, मृदा के उपजाऊपन एवं अन्य प्रबंधन कारकों पर निर्भर करती है। अतः मृदा परीक्षण के आधार पर ही उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।
- मक्का के लिये आमतौर पर 120-150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 75 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 75 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से संस्तुत की जाती है। नाइट्रोजन की एक चौथाई मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई से पहले खेत में देनी चाहिए। यदि मिट्टी में जीवांश पदार्थ की कमी हो, तो बुआई से लगभग 15-20 दिनों पहले 6-8 टन/हैक्टर की दर से गोबर की खाद का प्रयोग करने पर 25 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा कम कर सकते हैं। शेष नाइट्रोजन दो बार में बराबर मात्रा में टॉप ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करें। पहली टॉप ड्रेसिंग जब फसल घुटनों की ऊंचाई तक हो जाये, तब प्रयोग में लायें। दूसरा भाग जड़ें निकलने के समय खेत में डालें। जिन क्षेत्रों में गत वर्ष ऐसे लक्षण दिखाई दिये हों, उनमें अन्तिम जुताई के साथ 20-25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर की दर से मृदा में मिलाकर बीज बोना चाहियें।
- **सिंचाई:** मक्के में पौधों की प्रारम्भिक अवस्था तथा सिल्किंग से दाना पड़ने की अवस्था पर पर्याप्त नमी आवश्यक है। अतः यदि वर्षा न हो रही हो, तो सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। सिल्किंग के समय पानी न मिलने पर दाने कम बनते हैं। वर्षा के बाद खेत से जल निकास का अच्छा प्रबंधन होना चाहिए, अन्यथा पौधे पीले पड़ जाते हैं और उनकी बढ़वार रुक जाती है।
- **खरपतवार प्रबंधन:** मक्का की खेती में निराई-गुड़ाई का अधिक महत्व है। इसके साथ ही साथ निराई-गुड़ाई द्वारा खरपतवार नियंत्रण के साथ ही जड़ों में ऑक्सीजन का संचार होता है। इससे वह दूर तक फैलकर भोज्य पदार्थ को एकत्र कर पौधों को देती हैं। पहली निराई जमाव के 15-20 दिनों के बाद एवं दूसरी निराई 35-40 दिनों बाद करनी चाहिए।
- खरपतवारनाशी एट्राजीन (50 प्रतिशत डब्ल्यू.सी.) 1.5-2.0 कि.ग्रा./हैक्टर घुलनशील चूर्ण या एलाक्लोर (50 ई.सी.) 4-5 लीटर का 600-800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के दूसरे या तीसरे दिन अंकुरण से पूर्व प्रयोग करने से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। दूसरे खरपतवारनाशी एलाक्लोर (50 ई.सी.) 4.0-5.0 लीटर मात्रा को बुआई के तुरन्त बाद अंकुरण के पूर्व 600-800 लीटर पानी में मिलाकर प्रयोग किया जा सकता है। या टोपरामीजोन 33.6 प्रतिशत सक्रिय तत्व/एकड़ या टेम्बोट्रिओन 50 ग्राम सक्रिय तत्व/एकड़ बुआई के 20-30 दिनों बाद 500-600 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। यदि मक्का के बाद आलू की खेती किसान को करनी हो, तो एट्राजीन का प्रयोग न करें।

ग्रीष्मकालीन मूंगफली एवं सूरजमुखी

- मूंगफली की खुदाई तब करें, जब मूंगफली के छिलके के ऊपर नसें उभर आएं तथा भीतरी भाग कत्थई रंग के हो जायें। खुदाई के बाद फलियों को सुखाकर भण्डारण करें। यदि गीली मूंगफली का भण्डारण किया जाता है, तो मूंगफली काले रंग की हो जाती है, जो खाने एवं बीज हेतु अनुपयुक्त होती है।
- सूरजमुखी फूलों का पिछला भाग जब नीबू के रंग की तरह पीला हो जाए, तो यह कटाई के योग्य हो जाती है। निचले पत्ते सूखकर गिरने लगते हैं, तो यही इनकी कटाई का सही समय होता है। जब सभी पत्ते सूख जाते हैं, तब परिपक्व रूप में इनकी कटाई की जा सकती है। इन फूलों के मुख्य भाग को अलग करके इन्हें 2-3 दिनों तक सुखाना चाहिए। इससे इनके बीजों को अलग करने में सुविधा होती है। इस तरह से तैयार किये गये फूलों को लकड़ियों या मशीन से पीटकर इनके बीजों को अलग किया जाता है। इन बीजों को भण्डारगृह में रखने से पहले इन्हें सुखा लेना चाहिए ताकि इनकी नमी 10 प्रतिशत तक कम हो जाये और सूरजमुखी के डण्ठल दुधारू पशुओं के लिए एक अच्छा आहार होता है।

- **ज्वार** की खेती शुष्क जलवायु अर्थात कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसके लिए तापमान 25-35 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त है। अच्छी बढ़वार हेतु 40-60 सें.मी. वार्षिक वर्षा भी उपयुक्त रहती है। ज्वार के लिए हल्की दोमट, बलुई दोमट और भारी दोमट मृदा उपयुक्त होती है, साथ में जल निकास अच्छा होना आवश्यक है। ज्वार की बुआई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक उपयुक्त समय है। बारानी क्षेत्रों में इसकी बुआई वर्षा के तुरंत बाद करनी चाहिए।
- ज्वार के बीज की मात्रा संकर प्रजातियों के लिए 8-9 कि.ग्रा. और सामान्य (संकुल) प्रजातियों के लिए 10-12 कि.ग्रा./हैक्टर उपयुक्त रहती है।
- ज्वार की बुआई के लिए पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 45×15 सें.मी. रखनी चाहिए। ज्वार की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए एक हैक्टर में पौधों की कुल संख्या लगभग 1,50,000 होनी चाहिए। बुआई से पूर्व बीज को कार्बेण्डाजिम या एग्रोसन जीएन या कैप्टॉन आदि से 2-5 ग्राम/

संकर ज्वार

कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त बीज को जैविक उर्वरक एजोस्पीरीलम एवं पीएसबी से भी उपचारित करने से 15-20 प्रतिशत अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

- **ज्वार की संकर प्रजातियां** जैसे-सीएसएच 1, सीएसएच 9, सीएसएच 11, सीएसएच 13, सीएसएच 14, सीएसएच 16, सीएसएच 17, सीएसएच 18 आदि प्रमुख हैं।
- **ज्वार की चारे वाली प्रजातियां** जैसे-सीएसवी 30 एफ, सीएसवी 32 एफ (दो एकल कट), सीएसवी 33 एमएफ (एक मल्टी-कट), पूसा चरी-6 और पन्नी संकर ज्वार-5 इत्यादि प्रमुख हैं।
- **उर्वरक प्रबंधन:** सिंचित दशा में ज्वार की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 50-60 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की आवश्यकता पड़ती है, जबकि असिंचित दशा में 50-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 30-40 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर पर्याप्त होता है। सूक्ष्म पोषक तत्वों में जिंक तथा आयरन ज्वार के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। इन तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए जिंक 0.2 प्रतिशत तथा आयरन 0.15 प्रतिशत घोल का पर्णीय छिड़काव बुआई के 35-40 दिनों बाद अवश्य कर देना चाहिए।
- यदि जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद आदि उपलब्ध हों तो 10 टन/हैक्टर की दर से बुआई के 15-20 दिनों पूर्व खेत में समान रूप से छिड़ककर मृदा में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। जैविक खादों के प्रयोग से मृदा की भौतिक दशा में सुधार होता है तथा भूमि की जलधारण क्षमता भी बढ़ती है।
- **बाजरा** की फसल वृद्धि के लिए शुष्क एवं गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। इसकी वृद्धि एवं विकास के लिए 28-32 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। बाजरा की खेती पूर्णत: वर्षा पर आधारित है, जो वर्षा की अनियमितता, देरी, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि से प्रभावित होती है।
- बाजरा की खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली दोमट मृदा सर्वाधिक उपयुक्त होती है। उपलब्ध होने पर 20-22 टन गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद पहली जुताई के समय खेत में डालें। अच्छी वर्षा होने के बाद 2-3 बार हैरो चलाकर खेत को तैयार करें एवं भूमि को समतल करें, जिससे वर्षाकाल में जल का निकास अच्छी तरह से हो सके।
- बाजरे की बुआई जून से जुलाई में की जाती है, जो वर्षा पर निर्भर करती है। उपयुक्त समय 15 जून से 15 जुलाई है। जून में अच्छी वर्षा होने पर बुआई कर देनी चाहिए। यदि देरी से या लगातार भारी वर्षा हो, तो ऐसी स्थिति में बाजरे की सीधी बुआई न करें। पौध तैयार कर इसे मुख्य खेत में रोपित किया जा सकता है।
- बाजरे की फसल के लिए 4-5 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर पर्याप्त है। बुआई पंक्तियों में करनी चाहिए, जो बहुत लाभकारी होती है। बुआई के लिए 45 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी और 10-12 सें.मी. पौधे से पौधे की दूरी रखनी चाहिए तथा 2-3 सें.मी. गहराई पर बुआई करें। इस प्रकार पौने दो लाख से दो लाख पौधे/हैक्टर बुआई होनी चाहिए।
- **बाजरे की संकर प्रजातियां:** जैसे-पूसा 23, पूसा 415, पूसा 605, पूसा 322, एचएचबी 50, एचएचबी 67, एचएचडी 68, एचएचबी 117, एचएचबी इम्प्रूव्ड, बलवान 4903, 1116, 1827, 272 आदि प्रमुख हैं।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** रासायनिक खादों का प्रयोग मृदा परीक्षण के बाद ही करना चाहिए। अनुमान के अनुसार बाजरा की संकर प्रजातियों के लिए 80-90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश तथा संकुल प्रजातियों के लिए 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 25 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 25 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर बुआई के समय प्रयोग करें।
- सभी परिस्थितियों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा लगभग 3-4 सें.मी. की गहराई पर डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की बची हुई मात्रा अंकुरण से 4-5 सप्ताह बाद खेत में बिखेरकर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। बाजरे की फसल में थायोयूरिया जो एक पादप वृद्धि नियामक है, का 0.1 प्रतिशत घोल, 1 ग्राम थायोयूरिया/लीटर पानी का घोल बनाकर बुआई के 30-35 दिनों बाद एवं सिट्टे बनते समय दूसरा छिड़काव करने से उपज में 10-15 प्रतिशत वृद्धि की जा सकती है। इससे फसल में सूखा सहन करने की क्षमता में वृद्धि होती है।
- इसी प्रकार कोदो, चीना, मडुआ, रागी और सांवा फसलों की बुआई के लिए भी तैयारी इस माह में शुरू करते हैं। कोदो की 10-12 कि.ग्रा. और अन्य श्रीअन्न फसलों में 8-10 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर उपयोग करते हैं।

ग्रीष्मकालीन मूंग एवं उड़द

- फसल दैहिक रूप से परिपक्व तब मानी जाती है जब प्रकाश संश्लेषित पदार्थ का स्थानान्तरण आर्थिक भाग में स्थगित हो जाता है। फसल की जब 75-80 प्रतिशत फलियां पक जायें, तो हंसिया की सहायता से कटाई कर लेनी चाहिये तथा फसल को एक-दो दिनों के लिये खेत में ही सूखने के लिये छोड़ देना चाहिये। विलम्ब से कटाई करने पर फलियां चटक जाती हैं।
- कटाई के पश्चात मड़ाई करनी चाहिये तथा दानों को तब तक धूप में सुखाना चाहिये, जब तक उसमें नमी 12 प्रतिशत से कम रह जाये। इसके बाद दानों को स्वच्छ एवं सूखे स्थान पर भण्डारित करना चाहिये। ग्रीष्मकालीन फसल में कटाई एक-साथ की जाती है, परन्तु खरीफ फसल में कई बार बरसात के कारण कटाई सम्भव नहीं हो पाती है, ऐसे में फलियों की तुड़ाई की जा सकती है। फलियों की तुड़ाई का काम 2-3 बार किया जाना चाहिये। उपरोक्त विधि का प्रयोग करने पर किसान मूंग एवं उड़द की अच्छी फसल उगा सकते

ग्रीष्मकालीन मूंग

हैं तथा प्रति हैक्टर 12-14 क्विंटल उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

अरहर

- **मृदाः** अरहर की फसल के लिए ऐसी मृदा आवश्यक है, जिसमें जल निकास की सही व्यवस्था हो। खेत में पानी भरने पर फसल को भारी नुकसान हो सकता है। मृदा का पी-एच मान 5.5-8 के बीच होना चाहिए। अरहर में मृदाजनित रोगों से बचाव के लिए एक ही खेत में लगातार कई वर्षों तक अरहर नहीं उगानी चाहिए और बुआई करने से पहले खेत की एक बार गहरी जुताई करके 2-3 बार हैरो चलाकर मिट्टी को भुरभुरी कर लेनी चाहिए। इसके बाद खेत बुआई के लिए तैयार हो जाता है एवं बुआई के समय खेत में सही नमी का होना बहुत ही जरूरी है।
- **बुआई का समयः** अरहर खरीफ के मौसम में उगाई जाने वाली दलहनी फसल है। अरहर की खेती अगेती एवं पछेती फसल के रूप में करते हैं। सिंचित क्षेत्रों में अगेती अरहर की बुआई मध्य जून में पलेवा करके अवश्य करें। मेड़ों पर बोने से अच्छी उपज मिलती है। बुआई के समय पंक्तियों का अंतर 30-45 सें.मी. और पौधे से पौधे का अंतर 5-10 सें.मी. उचित रहता है। खरीफ की बुआई के लिए 15 से 18 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त रहता है तथा बीजों को 4-5 सें.मी. गहराई में बोना चाहिए।
- **बुआई की विधिः** प्रयोगों द्वारा यह साबित हो चुका है कि मेड़ों पर अरहर की बुआई करने पर न केवल पैदावार में बढ़ोतरी होती है, बल्कि इस तकनीक को अपनाने से जलभराव के नुकसान से भी बचा जा सकता है एवं साथ ही कवकजनित रोगों का प्रकोप भी कम होता है।

अरहर

- **अरहर की उन्नत प्रजातियांः** पूसा 16, पूसा 991, पूसा 992, पूसा 2001, पूसा 2002, पूसा 33, पूसा 855, पूसा 9, उपास 120, प्रभात, बहार एवं टाइप-21 शीघ्र पकने वाली तथा पन्त अरहर 291, मानक, अमर, नरेन्द्र अरहर 1, नरेन्द्र अरहर 2, नरेन्द्र अरहर 3 आदि देर से पकने वाली प्रमुख हैं।
- **बीजोपचारः** मृदा एवं बीजजनित कई कवक एवं जीवाणुजनित रोग, मृदा अंकुरण होते समय तथा इसके बाद बीजों को काफी क्षति पहुंचाते हैं। बीजों के अच्छे अंकुरण तथा स्वस्थ पौधों की पर्याप्त संख्या हेतु कवकनाशी से बीज उपचार की सलाह दी जाती है। इसके लिये प्रति कि.ग्रा. बीज को 2 से 2.5 ग्राम थीरम तथा 1 ग्राम कार्बेण्डाजिम से उपचार करने के बाद राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार करना चाहिए। अच्छी पैदावार के लिए प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की निर्धारित संख्या अनिवार्य है। कम पौधों की स्थिति में खरपतवारों का जमाव एवं विकास अधिक होगा तथा उत्पादन पर प्रभाव पड़ेगा।
- **पोषक तत्व प्रबंधनः** भरपूर उत्पादन हेतु संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें। उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। अरहर की अच्छी उपज लेने के लिए 10-15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 20 कि.ग्रा. सल्फर/हैक्टर की आवश्यकता होती है।
- अरहर की अधिक से अधिक उपज के लिए फॉस्फोरस युक्त उर्वरकों जैसे सिंगल सुपर फॉस्फेट 250 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर या 100 कि.ग्रा. डीएपी एवं 20 कि.ग्रा. सल्फर पंक्तियों में बुआई के समय पोरा या नाई की सहायता से देना चाहिए, जिससे उर्वरक का बीज के साथ सम्पर्क न हो।

सारणी 2. अरहर में पोषक तत्वों की संतुलित मात्रा

फसल	बीज की मात्रा (कि.ग्रा./हैक्टर)	पंक्ति से पंक्ति की दूरी (सें.मी.)	पौधे से पौधे की दूरी (सें.मी.)	नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश (कि.ग्रा./हैक्टर)	सल्फर एवं जस्ता (कि.ग्रा./हैक्टर)
अगेती अरहर	15-20	45	10-15	15-20:40-50:20	20:15
पछेती अरहर	10-15	60-75	20-25	15-20:40-50:20	20:15

सूरजमुखी

- भरपूर उत्पादन हेतु संतुलित उर्वरक का प्रयोग करें। कुछ क्षेत्रों में जस्ता या जिंक की कमी की अवस्था में 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।
- **सूरजमुखी की उन्नत संकुल प्रजातियांः** सूर्या, मॉडर्न, डीआरएस्फ -108, को-5, टीएएसएफ-82, एलएसएफ-8, फुले रविराज तथा संकर प्रजातियां जैसे-केवीएसएच-1, एसएच-3322, एमएसएफएच-1785-90, केवीएसएच-44, डीआरएसएच-1 प्रमुख हैं।
- **बीजदर, बुआई की दूरी एवं खरपतवार नियंत्रणः** संकर प्रजातियों का 7-8 कि.ग्रा. तथा संकुल प्रजातियों का 12-15 कि.ग्रा. बीज एक हैक्टर बुआई के लिए पर्याप्त होता है। संकर प्रजातियों की बुआई 60×20 सें.मी. तथा संकुल प्रजातियों की बुआई 45×20 सें.मी. पर करनी चाहिए।
- सूरजमुखी की बुआई के 15-20 दिनों बाद खेत से अवांछित पौधों को निकालकर पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. रखें। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए पेण्डीमेथिलीन (30 ई.सी.) 3.3 लीटर/हैक्टर की दर से 800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के बाद एवं जमाव से पहले छिड़काव करें।
- **पोषक तत्व प्रबंधनः** उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। मृदा परीक्षण न होने की दशा में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति

हैक्टर की दर से बुआई के समय प्रयोग करना चाहिए। खरपतवारों की रोकथाम के लिए प्री इमरजेंस फ्लूक्लोरीन का 2 लीटर/हैक्टर की दर से बीज की बुआई से 4-5 दिनों बाद छिड़काव करें एवं दोबारा 30-35 दिनों बाद हाथों से बचे हुए खरपतवारों को उखाड़ दें।

कपास

- **बुआई का समय, मृदा एवं बीजोपचार:** सिंचाई की अच्छी व्यवस्था हो तो मई-जून में भी इसकी बुआई की जा सकती है। बुआई के लिए सीड-कम-फर्टी ड्रिल अथवा प्लांटर का प्रयोग कर सकते हैं। कपास के लिए रेतीली लवणीय तथा सेम वाली मृदा को छोड़कर सभी प्रकार की मृदा में बुआई की जा सकती है।
- बोने से पूर्व बीज को प्रति कि.ग्रा. 2-5 ग्राम कार्बेण्डाजिम या कैप्टॉन दवा से उपचारित करें। इमिडाक्लोप्रिड 7 ग्राम अथवा कार्बोसल्फॉन 20 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज उपचारित कर बोने से फसल को 40 से 60 दिनों तक रस चूसक कीटों से सुरक्षा मिलती है। दीमक से बचाव के लिए 10 लीटर पानी में 10 मि.ली. क्लोरोपाइरीफॉस मिलाकर बीज पर छिड़क दें तथा 30-40 मिनट छाया में सुखाकर बुआई कर दें।
- **कपास की संकर प्रजातियां:** लक्ष्मी, एच.एस. 45, एच.एस.6, एल.एच. 144, एच.एल. 1556, एफ. 1861, एफ. 1378, एफ. 1378, एफ. 846 एवं देसी प्रजातियां जैसे-एच. 777, एच.डी. 1, एच. 974, एच.डी. 107 एवं एल.डी. 327 उगाई जा सकती हैं। अमेरिकन, देसी और संकर कपास का क्रमशः 15-20, 10-12 और 4-5 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। देसी कपास अथवा अमेरिकन के लिए 60×30 सें.मी. तथा संकर किस्मों के लिए 90×40 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति और पौधें से पौधे की दूरी रखनी चाहिए।

कपास

- **पोषक तत्व प्रबंधन:** उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। कपास की देसी किस्मों के लिये 50-70 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20-30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, अमेरिकन एवं देसी किस्मों के लिये 60-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 20-30 कि.ग्रा. पोटाश और संकर किस्मों के लिये 150-60-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश/हैक्टर की आवश्यकता होती है। इसके अलावा 25 कि.ग्रा. जिंक/हैक्टर का प्रयोग लाभदायक है।
- **रोग एवं कीट प्रबंधन:** कपास में बैक्टीरियल झुलसा रोग तथा फफूंदजनित रोग लगते हैं। इनके बचाव के लिए वर्षा प्रारम्भ होने पर जून में 1.25 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण एवं 50 ग्राम एग्रीमाइसीन प्रति हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोलकर दो छिड़काव 20 से 25 दिनों के अन्तराल पर करने चाहिए।
- कपास में कीटों, जैसे कि फुदका या जैसिड, सफेद मक्खी, माहूं, तेला, थ्रिप्स एवं गूलरबेधक से काफी नुकसान होता है। इनके नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस 25 ई.सी. 1.25 लीटर, साथ ही सफेद मक्खी, गूलरबेधक कीट हेतु ट्रायकोफॉस 40 ई.सी., 1.50 लीटर हेतु रसायन 250 से 300 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करना चाहिए।

सोयाबीन

- **जलवायु:** सोयाबीन फसल के लिए

तिल

- जून के अंतिम सप्ताह से लेकर जुलाई के प्रथम सप्ताह तक के समय को तिल की अधिक उपज के लिए उपयुक्त पाया गया है। अधिक उपज लेने तथा निराई-गुड़ाई में आसानी के लिए तिल को पंक्तियों में बोना चाहिए। पंक्तियों के बीच का फासला 30-45 सें.मी. का रखें। वांछित पौध संख्या प्राप्त करने के लिए 4 से 5 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर प्रयोग करें। बुआई के 15 से 20 दिनों बाद पौधों की छंटाई करते समय पौधे से पौधे की दूरी 10 से 15 सें.मी. रखें।

- **उन्नत प्रजातियां:** फसल की अधिक उपज लेने के लिए गुजरात तिल नं.-1, गुजरात तिल नं.-2, फुले तिल नं.-1, प्रताप, ताप्ती, पदमा, एन.-8, डी. एम. 1, पूरवा 1, आर.टी. 54, आर.टी. 103, आर.टी. 54, आर.टी. 103 आदि उन्नत किस्में हैं।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** मृदा की जांच संभव न होने की अवस्था में सिंचित क्षेत्रों में 40-50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20-30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 20 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर देनी चाहिए। वर्षा आधारित फसल में 20-25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और 15 से 20 कि.ग्रा. फॉस्फोरस/हैक्टर करें। मुख्य तत्वों के अतिरिक्त 10 से 20 कि.ग्रा./हैक्टर गंधक का उपयोग करने से तिल की उपज में वृद्धि की जा सकती है, जहां जिंक की कमी हो, वहां पर दो वर्ष में एक बार 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर प्रयोग करें। लंबे समय के लिए सूखा पड़ने की अवस्था में खड़ी फसल में 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव करें।

खरीफ मूंगफली एवं सूरजमुखी

- खरीफ मूंगफली की फसल बुआई का उचित समय जून का दूसरा पखवाड़ा है। असिंचित क्षेत्रों में जहां बुआई मानसून के बाद की जाती है, जुलाई के पहले पखवाड़े में बुआई के काम को पूरा कर लें। प्रजातियों और मौसम के अनुसार खेत में पौधों की संख्या में अंतर रखा जाता है। गुच्छेदार किस्मों में पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की दूरी 30×10 सें.मी. रखें और फैलने वाली प्रजातियों में पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की दूरी 45-60×10-15 सें.मी. रखें। खरीफ मौसम में यदि संभव हो, तो मूंगफली की बुआई मेड़ों पर करें।

- **मूंगफली की उन्नत प्रजातियां** जैसे-आई.सी.जी.एस. 11, आई.सी.जीएस. 44, आई.सी.सी.एस. 37, जी.जी. 3, जी.जी. 6, जी.जी. 12, वी.आर.आई. 2 आदि प्रमुख हैं।
- **बीजदर एवं बीजोपचार:** मूंगफली की मध्यम और अधिक फैलने वाली प्रजातियों में क्रमश: 80-100 और 60-80 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर, जबकि गुच्छेदार किस्मों में बीज की उचित मात्रा 100-125 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त है। बुआई से पूर्व बीज को 2 या 3 ग्राम थीरम या कार्बेण्डाजिम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित करें। इस उपचार के 5-6 घंटे बाद, बीज को एक विशिष्ट प्रकार के उपयुक्त राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें। उपचार के बाद बीजों को छाया में सुखायें एवं शीघ्र ही बुआई के लिए उपयोग करें।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्रिया के शुरू होने से पहले की मांग की पूर्ति के लिए 20-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 30-40 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर प्रयोग करें। मुख्यत: पोषक तत्वों के अतिरिक्त गंधक और कैल्शियम का मूंगफली की उपज और गुणवत्ता पर महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया है। इन दोनों तत्वों की मांग की पूर्ति के लिए 200-400 कि.ग्रा. जिप्सम/हैक्टर की दर से प्रयोग करें। जिप्सम की शेष आधी मात्रा को फूल निकलने के समय 5 सें.मी. की गहराई पर पौधे के पास दिया जाना चाहिए। बारानी क्षेत्रों में 15-20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 20-25 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से प्रयोग करें। बोरॉन की कमी की पूर्ति हेतु 2 कि.ग्रा. बोरेक्स/हैक्टर एवं जस्ते की कमी की पूर्ति हेतु 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट का प्रयोग करें।
- **सूरजमुखी** की अच्छे जल निकास वाली सभी तरह की मृदा में खेती की जा सकती है। दोमट एवं बलुई दोमट मृदा जिस का पी-एच मान 6.5-8.5 हो, इसके लिए बेहतर होती है। 26-30 डिग्री सेल्सियस तापमान में सूरजमुखी की अच्छी फसल ली जा सकती है। बीजों को बुआई से पहले 1 लीटर पानी में जिंक सल्फेट की 20 ग्राम मात्रा मिलाकर बनाए गए घोल में 12 घंटे तक भिगो लें। फिर उसके बाद छाया में 8-9 फीसदी नमी बच जाने तक सुखाएं। उसके बाद बीजों को बाविस्टिन या थीरम से उपचारित करें। कुछ देर छाया में सुखाने के बाद पीएसबी 200 ग्राम/कि.ग्रा. की दर से बीजों का उपचार करें। उसके बाद बीजों को 24 घंटे तक सुखाएं। सूरजमुखी की फसल की 15 जून के बाद बीज उपचारित करके बुआई करें।

शुष्क गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। इसके बीजों का जमाव 25 डिग्री सेल्सियस पर 4 दिनों में हो जाता है, जबकि इससे कम तापमान होने पर बीजों के जमाव में 8-10 दिनों का समय लगता है। अत: सोयाबीन की खेती के लिए 60-65 सें.मी. वर्षा वाला स्थान उपयुक्त माना गया है। सोयाबीन की खेती के लिए उचित जल-निकास वाली दोमट मृदा सबसे अच्छी रहती है।

- सोयाबीन की बुआई उत्तरी मैदानी एवं मध्य क्षेत्रों में मध्य जून से मध्य जुलाई तक, दक्षिणी क्षेत्रों में मध्य जून से जुलाई अंत तक, उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में मध्य जून से मध्य जुलाई तक पूरी कर लें। जमने के बाद सोयाबीन के पौधों को अधिक पानी से नुकसान नहीं होता। पौधों की जड़ों में एरेनकाइका ऊतक बन जाते हैं, जो जड़ों को हवा प्रदान करते हैं। फलस्वरूप उनकी श्वसन एवं अन्य क्रियाएं आवश्यकतानुसार होती रहती हैं। फूल आने से 2 सप्ताह पूर्व सिंचाई अवश्य करनी चाहिए, जिससे पौधों पर फलियां अधिक से अधिक लग सकें।

सोयाबीन

- **किस्मों का चयन:** सोयाबीन की उत्तर मैदानी क्षेत्र के लिए पी.के. 416, पूसा 16, पी.एस. 564, पी.एस. 1024, पी. एस. 1042, पी.एस. 1024, पी. एस. 1241, मध्य भारत क्षेत्र के लिए एन.आर.सी. 7, ए.आर.सी. 37, जे.एस. 80-21, समृद्धि, एम.ए.यू. एस. 81, उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के लिए बिरसा सोयाबीन 1, इंदिरा सोया 9, प्रताप सोया 9 एवं उत्तर-पहाड़ी क्षेत्र के लिए शिलाजीत, पूसा 16, वी.एल. सोया 2, वी.एल.सोया 47, हरा सोया, पालम सोया, पंजाब आदि संस्तुत प्रजातियां हैं।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** सोयाबीन से अच्छा उत्पादन लेने के लिए लगभग

गन्ना

- गन्ने की फसल में निराई-गुड़ाई, खरपतवार नियंत्रण एवं सिंचाई आवश्यकतानुसार करें। गन्ने की फसल में यूरिया का प्रयोग गन्ने की वृद्धि और उत्पादन को बढ़ाने के लिए किया जाता है। यूरिया का छिड़काव 5 प्रतिशत यूरिया घोल बनाकर किया जा सकता है। नाइट्रोजन की शेष बची हुई मात्रा 50 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग के रूप में देकर मिट्टी चढ़ा दें। गन्ने की फसल में यूरिया का उपयोग बुआई के 45, 90, 120 और 150 दिनों के बाद किया जा सकता है।
- **खरपतवार नियंत्रण:** खरपतवार नियंत्रण के लिए निराई अवश्य करें। यदि देर से या अप्रैल में बुआई के समय एट्राजिन का उपयोग किया है, तो इस महीने में खरपतवार नियंत्रण के लिए 2,4 डी 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

5-10 टन/हैक्टर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद बुआई से लगभग 20-25 दिनों पहले खेत में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। सोयाबीन की फसल में 20-25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60-80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40-50 कि.ग्रा. पोटाश और 20-25 कि.ग्रा. गन्धक प्रति हैक्टर पोषक तत्वों की मात्रा देनी चाहिए।

- **बीजदर:** बीजों का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बीज अधिक पुराना न हो। एक वर्ष के बाद इसकी अंकुरण क्षमता कम हो जाती है। छोटा दाना 60-65 कि.ग्रा., मध्यम दाना 70-75 कि.ग्रा. एवं मोटा दाना 80-85 कि.ग्रा./हैक्टर पर्याप्त होता है। सोयाबीन की बुआई पंक्तियों में 45×50 सें.मी. की दूरी पर करनी चाहिए। बुआई से पहले बीज को 2 ग्राम थीरम+1 ग्राम कार्बेण्डाजिम/कि.ग्रा. बीज के हिसाब से भली प्रकार उपचारित कर लेना चाहिए। इसके बाद राइजोबियम एवं पीएसबी जीवाणु टीके से बीज को उपचारित करें।
- खरपतवार नियंत्रण के लिए बुआई के बाद और अंकुरण से पहले एलाक्लोर (50 ई.सी.) की 4 लीटर या फ्लूक्लोरोलिन या ट्राइफ्लोरालिन 1 कि.ग्रा. या पेण्डीमेथिलीन 1 कि.ग्रा. या क्लोमोजोन 1 कि.ग्रा. मात्रा को 600-800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

सब्जी फसलें

- भिंडी लगभग सभी तरह की मृदा में उगाई जा सकती है। अधिक उत्पादन हेतु जल निकास एवं जीवांशयुक्त 6-6.8 पी-एच मान वाली दोमट मृदा सर्वोत्तम रहती है। भिंडी की फसल की यदि अप्रैल-मई में बुआई हुई है, तो भिंडी की तुड़ाई जून में करनी है। तापमान अधिक होने के कारण सिंचाई प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जून बरसाती भिंडी की फसल की बुआई का उपयुक्त समय है।

लाल भिंडी

- **भिंडी की प्रजाति** पूसा ग्रीन भिंडी-5, पूसा ए-4, पूसा सावनी, पूसा मखमली,

बैंगन

- बैंगन को लम्बे गर्म और बरसाती मौसम की आवश्यकता होती है। बैंगन की खेती के लिए जल निकासी वाली सभी प्रकार की भूमि अच्छी पैदावार देती है। इसके साथ-साथ यदि मृदा दोमट और हल्की दोमट हो, तो यह इस फसल के लिए सबसे उपयुक्त होती है।
- बैंगन के लिए 5-7 सें.मी. के फासलों से पंक्ति बनाकर पौधशाला में बीज बोने चाहिए। एक हैक्टर के लिए 400-450 ग्राम बीज सामान्य प्रजाति के उपयुक्त माने जाते हैं। संकर प्रजातियों के लिए 250-275 ग्राम/हैक्टर बीज उपयुक्त हैं।

- अगेती बैंगन की पौध तैयार करने के लिए पौधशाला की तैयारी कर बीज बोयें। बुआई से पहले 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा या 2 ग्राम थीरम या कैप्टॉन से प्रति कि.ग्रा. की दर से बीज को उपचारित करें।
- अगेती बैंगन की प्रजाति पूसा श्यामला, पूसा पर्पल क्लस्टर, पूसा उत्तम, पूसा बिंदु, पूसा अंकुर, पंजाब बरसाती आदि के लिए उपयुक्त हैं।
- बैंगन की फसल में 2-3 निराई-गुड़ाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। खरपतवार के नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशी का भी उपयोग कर सकते हैं। इसके लिए एलाक्लोर 50 ईसी 3.5 लीटर या वासालिन 48 ईसी 2 लीटर/हैक्टर 800 से 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर रोपाई से पहले छिड़काव करना चाहिए।

वर्षा उपहार, परभणी क्रांति, आजाद भिंडी, अर्का अनामिका, वीआरओ-5 एवं वीआरओ-6, आईआईवीआर-10 आदि प्रमुख हैं।

- **बीजदर एवं पोषक तत्व प्रबंधन:** एक हैक्टर क्षेत्र के लिए भिंडी के 8-10 कि.ग्रा. बीज 45×30 सें.मी. की दूरी पर बुआई करने के लिए पर्याप्त होता है। खेत की तैयारी के समय 25-30 टन सड़ी गोबर की खाद या 10 टन नाडेप कम्पोस्ट खाद प्रति हैक्टर की दर से खेत में मिलायें। भिंडी फसल में बुआई के समय 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से प्रयोग करें। भिंडी की फसल में तुड़ाई के बाद यूरिया/5-10 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से डालें तथा उसके उपरांत सिंचाई करें।
- **पौध संरक्षण:** साथ ही तापमान को ध्यान में रखते हुए माइट, जैसिड और हॉपर की निरंतर निगरानी करते रहें। इस मौसम में भिंडी की फसल में हल्की सिंचाई कम अंतराल पर करें। खरपतवार के लिए बुआई के 30-60 दिनों के दौरान कुल 2-3 निराई-गुड़ाई पर्याप्त होती हैं। जहां पर खरपतवारों की अधिक समस्या हो वहां खरपतवारनाशी फ्लूक्लोरालिन 1.5-2.0 लीटर को 500-600 लीटर पानी में घोलकर/हैक्टर क्षेत्र में बुआई से पूर्व छिड़काव करें।
- **लोबिया** की खेती के लिए गर्म एवं आर्द्र जलवायु उपयुक्त है। तापमान 24-27 डिग्री सेल्सियस के बीच ठीक रहता है। अधिक ठंडे मौसम में पौधों की बढ़वार रुक जाती है। सभी प्रकार की मृदा में इसकी खेती की जा सकती है। मृदा का पी-एच मान 5.5-6.5 उचित रहता है। भूमि में जल निकास का उचित प्रबंधन होना चाहिए। वर्षा के मौसम के लिए इसकी बुआई जून अंत से जुलाई में की जाती है।

लोबिया

- **समय एवं किस्मों का चयन:** लोबिया की बुआई के लिए जून उपयुक्त समय है। लोबिया की प्रजाति पूसा कोमल, पूसा सुकोमल, पूसा बरसाती, पूसा दो फसली, अर्का, गरिमा, काशी गौरी तथा काशी कंचन आदि प्रमुख हैं।
- **बीजदर एवं पोषक तत्व प्रबंधन:** एक हैक्टर क्षेत्र में बुआई करने के लिए 15-20 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। लोबिया की बौनी प्रजातियों की बुआई को 45×15 सें.मी. और फैलने वाली प्रजातियों की बुआई 75×25 सें.मी. की दूरी पर करनी चाहिए। लोबिया की अच्छी फसल लेने के लिए/हैक्टर 15 टन सड़ी गोबर की खाद या 8 टन नाडेप कम्पोस्ट खाद के साथ बुआई के समय 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।
- कद्दूवर्गीय सब्जियों जैसे-लौकी, तोरई, करेला, टिंडा, कद्दू, खीरा, ककड़ी, तरबूज, खरबूजा तथा पेठा की बुआई का उपयुक्त समय है।
- लौकी की पूसा समर प्रोलिफिक लौंग, पूसा नवीन, तोरई की पूसा चिकनी, पूसा नसदार, पंजाब सदाबहार, सतपुतिया, करेला की पूसा दो मौसमी, पूसा विशेष, कोयम्बटूर लौंग, कल्याणपुर बारहमासी, टिंडा की कल्याणपुर, लुधियाना सलेक्शन, हिसार सलेक्शन-1, पंजाब टिंडा कद्दू की प्रजाति पूसा विश्वास, पूसा विकास, पूसा हाइब्रिड 1 तथा खीरा की पूसा उदय, पूसा बरखा, प्वाइन सेट, कल्याणपुर, जापानीज लौंग ग्रीन तथा पेठा की पूसा उज्ज्वल, पूसा उर्मि (डी.ए.जी.एच.-16), पूसा श्रेयाली (डी.ए.जी.एच.-14) प्रमुख प्रजातियां हैं।

प्याज

- प्याज की फसल के लिए ऐसी जलवायु की आवश्यकता होती है जो न अधिक गर्म हो और न ही बहुत ठण्डी। अच्छे कन्द बनने के लिए बड़े दिनों तथा अधिक तापमान का होना अच्छा रहता है। आमतौर पर सभी प्रकार की भूमि में इसकी खेती की जाती है, लेकिन उपजाऊ दोमट मृदा, जिसमें जीवांश खाद प्रचुर मात्रा में हो एवं जल निकास की उत्तम व्यवस्था हो, सर्वोत्तम रहती है। प्याज की बुआई खरीफ मौसम में, यदि बीज द्वारा पौधा बनाकर फसल लेनी हो तो, जून के मध्य तक करते हैं और यदि छोटे कन्दों द्वारा खरीफ में अगेती या हरी प्याज लेनी हो, तो कन्दों को अगस्त में बोयें।
- एक हैक्टर में फसल लगाने के लिए 8-10 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। पौधे एवं कन्द तैयार करने के लिए बीज को क्यारियों में बोयें, जो 3×1 मीटर आकार की हों। वर्षाकाल में उचित जल निकास हेतु क्यारियों की ऊंचाई 10-15 सें.मी. रखनी चाहिए। नर्सरी में अच्छी तरह खरपतवार निकालने तथा दवा डालने के लिए बीजों को 5-7 सें.मी. की दूरी पर पंक्तियों में 2-3 सें.मी. गहराई पर बोना अच्छा रहता है। क्यारियों की मिट्टी को बुआई से पहले अच्छी तरह भुरभुरी कर लेनी चाहिए। पौधों को आर्द्र गलन रोग से बचाने के लिए बीज को ट्राइकोडर्मा विरिडी (4 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) या थीरम (2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करके बोना चाहिए। बोने के बाद बीजों को बारीक खाद एवं भुरभुरी मिट्टी एवं घास से ढक दें।
- प्याज की एन 53, पूसा रेड, पूसा रतनार, एग्रीफाउंड लाइट रेड, एग्रीफाउंड रोज, पूसा व्हाइट राउंड, पूसा व्हाइट फ्लैट, भीमा डार्क रेड आदि प्रजातियां खरीफ मौसम के लिए उपयुक्त हैं। खरीफ प्याज के लिए 75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश और 20 कि.ग्रा. सल्फर/हैक्टर की दर से प्रयोग की जाती है। खरीफ में जल भराव से एंथ्राक्नोज रोग प्याज में काफी हानि पहुंचाता है, इसलिए पानी का निकास अच्छा होना चाहिए।

लौकी

- लौकी एवं तोरई के 4-5 कि.ग्रा., टिंडा के 5-6 कि.ग्रा., काशीफल एवं खीरा 3-4 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होते हैं।
- कद्दूवर्गीय सब्जियों की उन्नत प्रजातियों के लिए 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 25 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 25 कि.ग्रा. पोटाश तथा कद्दूवर्गीय संकर प्रजातियों के लिए 100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।
- इस मौसम में बेल वाली फसलों में न्यूनतम नमी बनाएं रखें, अन्यथा मृदा में कम नमी होने से पुष्पण एवं परागण पर असर हो सकता है। इससे फसल उत्पादन में कमी आ सकती है। तापमान अधिक रहने की आशंका को देखते हुए, किसान तैयार सब्जियों की तुड़ाई सुबह या शाम को करें तथा इसके बाद इसे छायादार स्थान में रखें।
- फूलगोभी की अगेती फसल के लिए अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मृदा अच्छी होती हैं। खेत की तैयारी भलीभांति जुताई करके एवं पाटा चलाकर करनी चाहिए। 2.5×1.0 मीटर की सात क्यारियों में लगभग 200 ग्राम बीज बोया जा सकता हैं। क्यारियां 15 सें.मी. ऊंची बनानी चाहिए। क्यारियों के लगभग 8 सें.मी. ऊपरी सतह पर गोबर की सड़ी खाद पर्याप्त मात्रा में मिलाना आवश्यक है तथा खाद मिलाने के बाद क्यारी को समतल कर लेना चाहिए। बीज 2.5-5.0 सें.मी. की पंक्तियों में बोना चाहिए। अगेती फूलगोभी की पौध तैयार करने के लिए पौधशाला की तैयारी कर बीज बोयें।

फूलगोभी

- बुआई से पहले 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा या 2 ग्राम थीरम या कैप्टॉन/कि.ग्रा. की दर से बीज को उपचारित करें। अगेती फसल के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 45 सें.मी. होने चाहिए।
- अगेती फूलगोभी की प्रजाति पूसा दिपाली, पूसा कार्तिक संकर, पूसा सिंथेटिक, पूसा मेघना, पूसा अर्ली, पंत गोभी-2, पन्त गोभी-3, अर्ली पटना, अर्ली कुंवारी, सेल-327 एवं सेल-328 आदि प्रमुख प्रजातियां हैं।
- फूलगोभी की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए प्रति हैक्टर 300 क्विंटल गोबर की खाद को रोपाई से पूर्व खेत में डालकर भलीभांति मिला देना चाहिए। उर्वरक के रूप में 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती हैं। दोमट मृदा में अगेती किस्मों में 5-6 दिनों के अंतर से सिंचाई पौध रोपण के तुरंत बाद करना आवश्यक है।
- मिर्च की खेती मैदानी क्षेत्रों में वर्षा के मौसम में खेती की जाती है। बीज अकुंरण के लिए 16-20 डिग्री सेल्सियस, पौधे की बढ़वार के लिए 21-27 डिग्री सेल्सियस तथा फल विकास एवं परिपक्वता के लिए 30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त है।

अगेती हरी मिर्च

- बलुई दोमट एवं दोमट मृदा, जिसका पी-एच मान 5.6 से 6.8 हो, उपयुक्त होती है। मैदानी क्षेत्रों में मिर्च के लिए खरीफ के मौसम में बुआई का समय जून-जुलाई तक होता है।
- मिर्च के लिए 1000-1200 ग्राम बीज की मात्रा पर्याप्त है। अगेती मिर्च की पौधे तैयार करने के लिए पौधशाला की तैयारी कर बीज बोयें। बुआई से पहले 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा या 2 ग्राम थीरम या कैप्टॉन प्रति कि.ग्रा. की दर से बीज को उपचारित करें। हरी मिर्च की प्रजाति पूसा ज्वाला, पूसा सदाबहार, एन.पी.-46 ए, पन्त सी-1 आदि उपयुक्त हैं।
- इस समय मिर्च की पौध भी तैयार होगी और जून के आखिरी समय तक 30-35 दिनों की पौध को खेत में रोपण कर देना चाहिए। सामान्य प्रजातियों की रोपाई के लिए पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 45×45 सें.मी. तथा संकर प्रजातियों की रोपाई पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे 60×45 सें.मी. की दूरी पर करनी चाहिए।
- खेत की तैयारी करते समय 20-25 टन सड़ी गोबर की खाद के साथ बुआई के समय 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा., फॉस्फोरस पोटाश 40 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए। रोपाई से पहले अंतिम जुताई के समय आधी नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा आखिरी जुताई के समय मिला देनी चाहिए तथा शेष नाइट्रोजन की मात्रा खड़ी फसल में दो बार में देनी चाहिए।
- मिर्च के खेत में विषाणु रोग से ग्रसित पौधों को उखाड़कर जमीन में दबा दें। उसके उपरांत इमिडाक्लोप्रिड 0.3 मिली/लीटर की दर से छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार फसल में कम अंतराल में सिंचाई करें।
- अदरक एवं हल्दी की फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा 50 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

बागवानी फसलें

- आंवला एक अत्यधिक उत्पादनशील प्रचुर पोषक तत्वों वाला तथा अद्वितीय औषधीय गुणों वाला पौधा है। आंवला का फल विटामिन 'सी' का प्रमुख स्रोत है तथा शर्करा एवं अन्य पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। आंवला उष्ण जलवायु का वृक्ष है।

इसकी खासियत यह भी है कि इसे शुष्क प्रदेश में आसानी से उगाया जा सकता है।

- बलुई मृदा के अतिरिक्त सभी प्रकार की मृदा में आंवला की खेती की जा सकती है। आंवला का पौधा काफी कठोर होता है अत: सामान्य मृदा, जिसका पी-एच मान 9 तक हो, उनमें भी आंवला की खेती की जा सकती है।

आंवला

- ऊसर मृदा में जून में 8-10 मीटर की दूरी पर 1.0-1.25 मीटर के गड्ढे खोद लेने चाहिए। बरसात के मौसम में इन गड्ढों में पानी भर देना चाहिए तथा एकत्रित पानी को निकालकर फेंक देना चाहिए।
- प्रत्येक गड्ढे में 50-60 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 15-20 कि.ग्रा. बालू, 8-10 कि.ग्रा. जिप्सम और ऑर्गेनिक खाद का मिश्रण लगभग 5 कि.ग्रा. भर देना चाहिए। भराई के 15-25 दिनों बाद अभिक्रिया समाप्त होने पर ही पौधे का रोपण करना चाहिए एवं सामान्य मृदा में प्रत्येक गड्ढे में 40-50 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद और 2 कि.ग्रा. नीम की खली का मिश्रण और ऊपर वाली मिट्टी मिलाकर भर देना चाहिए। गड्ढे जमीन के तह से 15-20 सें.मी. उंचाई तक भर दें।
- **पपीते** की अच्छी खेती गर्म नमीयुक्त जलवायु में की जा सकती है। इसे अधिकतम 38-44 डिग्री सेल्सियस तक तापमान होने पर उगाया जा सकता है। जमीन उपजाऊ हो तथा जिसमें जल निकास अच्छा हो, तो पपीते की खेती उत्तम होती है। पपीता के नये बागों के रोपण हेतु रेखांकन करने के उपरान्त गड्ढों की खुदाई करें।
- पपीता हेतु 2.1-5 मीटर की दूरी पर 75 सें.मी. लम्बे, चौड़े एवं गहरे गड्ढे बनायें। प्रत्येक गड्ढे में 30-40 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 1 कि.ग्रा. नीम की खली, गड्ढे से निकाली गयी ऊपर की मिट्टी में मिलाकर गड्ढे को जमीन से 20 सें.मी. की ऊंचाई तक भर दें।

आम

- आम के पौधों को 10×10 मीटर की दूरी पर लगायें। किंतु सघन बागवानी में इसे 2.5 से 4 मीटर की दूरी पर लगायें। पौधा लगाने के पूर्व खेत में रेखांकन कर पौधों का स्थान सुनिश्चित कर लें। पौधे लगाने के लिये 1×1×1 मीटर आकार का गड्ढा खोदें। आम की सघन बागवानी के लिए आम्रपाली और पूसा पीताम्बर जैसी किस्मों को सबसे उपयुक्त माना जाता है।

- वर्षा प्रारंभ होने के पूर्व, जून में 20-30 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 2 कि.ग्रा. नीम की खली, 1 कि.ग्रा. हड्डी का चूरा अथवा सिंगल सुपर फॉस्फेट एवं 100 ग्राम मिथाइल पैरामिथियॉन की डस्ट (10 प्रतिशत) या 20 ग्राम थीमेट 10-जी को खेत की ऊपरी सतह की मिट्टी के साथ मिलाकर गड्ढों को अच्छी तरह भर दें। दो-तीन बार बारिश होने के बाद जब मिट्टी दब जाये, तब पूर्व चिन्हित स्थान पर खुरपी की सहायता से पौधे की पिंडी के आकार की जगह बनाकर पौधा लगायें। पौधा लगाने के बाद आसपास की मिट्टी को अच्छी तरह दबाकर एक थाला बना दें एवं हल्की सिंचाई करें।
- आम के पौधे की देखरेख उसके समुचित फलन एवं पूर्ण उत्पादन हेतु आवश्यक है। पौधों को लगाने के बाद पौधों के पूर्ण रूप से स्थापित होने तक, सिंचाई करें। प्रारंभिक 2-3 वर्षों तक लू से बचाने के लिये सिंचाई करें। जमीन से 80 सें.मी. की ऊंचाई तक की शाखाओं को निकाल दें, जिससे मुख्य तने का समुचित विकास हो सके।
- आम में ग्राफ्टिंग का कार्य इस माह शुरू करें। ग्राफ्टिंग के स्थान के नीचे से कोई शाखा नहीं निकलनी चाहिये। ऊपर की 3-4 शाखाओं को बढ़ने दें। बड़े छत्रक वाले घने वृक्षों में, न फलने वाली बीच की शाखाओं को काट दें। फलों को तोड़ने के बाद मंजर के साथ-साथ 2-3 सें.मी. टहनियों को काट दें ताकि स्वस्थ शाखायें निकलें। ऐसा करने से अगले मौसम में अच्छा फलन प्राप्त होगा।
- आम की डासी मक्खी के नियंत्रण के लिए मिथाइल यूजीनाल ट्रैप का प्रयोग करें। प्लाई/लकड़ी के टुकड़े को अल्कोहल, मिथाइल, मैलाथियान (6:4:1) के घोल में 48 घंटे डुबोने के बाद पेड़ पर लटका दें तथा ट्रैप को दो माह बाद बदल दें। साथ ही मिलीबग की रोकथाम के लिए 2 प्रतिशत मिथाइल पैराथिऑन का उपयोग करना चाहिए।

पपीता

- एक हैक्टर के लिए 500 ग्राम से एक कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। पपीते के पौधे बीज द्वारा तैयार किये जाते हैं। एक हैक्टर खेती में प्रति गड्ढे 2 पौधे लगाने पर 5000 हजार पौध संख्या की आवश्यकता होती है।
- पपीते की उगाई जाने वाली उन्नत किस्में जैसे-पूसा मेजस्टी, पूसा जॉयंट, वाशिंगटन, सोलो, कोयम्बटूर, हनीड्यू, कुंर्ग हनीड्यू, पूसा ड्वार्फ, पूसा डिलीशियस, सिलोन, पूसा नन्हा आदि प्रमुख हैं। 20 सें.मी. चौड़े मुंह वाली, 25 सें.मी. लम्बी तथा 150 सें.मी. छेद वाले पॉलीथीन थैलियां लें। इन थैलियों में गोबर की खाद, मिट्टी एवं रेत का मिश्रण करना चाहिए।
- थैली का ऊपरी 1 सें.मी. भाग नहीं भरना चाहिए। प्रति थैली 2 से 3 बीज होने चाहिए। मिट्टी में हमेशा पर्याप्त नमी रखना चाहिए। जब पौधे 15-20 सें.मी. ऊंचे हो जायें, तब थैलियों के नीचे से धारदार ब्लेड द्वारा सावधानीपूर्वक काटकर पहले तैयार किये गये गड्ढों में लगाना चाहिए।
- **नीबू** के एक वर्ष के पौधे में 25 ग्राम नाइट्रोजन एवं 25 ग्राम पोटाश की मात्रा को प्रतिवर्ष इस अनुपात में बढ़ाते रहें, जो क्रमश: 10 वर्ष में बढ़कर या उससे अधिक आयु के पौधों के लिए 250 ग्राम नाइट्रोजन एवं पोटाश हो जायेगी, का प्रयोग इस माह या फल लगने के दो माह बाद करें।

अमरूद

- अमरूद के अच्छे उत्पादन के लिये उपजाऊ बलुई दोमट मृदा अच्छी पाई गई है। इसके उत्पादन हेतु 6-7.5 पी-एच मान की मृदा उपयुक्त होती है, किन्तु 7.5 से अधिक पी-एच मान की मृदा में उकठा रोग के प्रकोप की आशंका होती है।

- अमरूद को उष्ण तथा उपोष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक उत्पादित किया जा सकता है। अमरूद की खेती के लिये 15-30 डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। यह सूखे को भलीभांति सहन कर लेता है। तापमान के अधिक उतार-चढ़ाव, गर्म हवा, कम वर्षा, जलक्रान्ति का फलोत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव कम पड़ता है।
- अमरूद की उगाई जाने वाली उन्नत किस्में जैसे-इलाहाबाद सफेदा, हिसार सफेदा, लखनऊ-49, चित्तीदार, ग्वालियर-27, एपिल-गुवावा एवं धारीदार प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त अर्का-मृदुला, श्वेता, ललित एवं पंत-प्रभात किस्में व्यावसायिक उत्पादन हेतु उपयोग में लाई जा सकती हैं। कोहीर, सफेदा एवं सफेद जाम नामक संकर प्रजातियां भी उपयोग में लाई जा सकती हैं।
- अमरूद के नये बागों के रोपण हेतु रेखांकन करने के उपरान्त गड्ढों की खुदाई करें। अमरूद के लिए 5×5 मीटर की दूरी पर 75 सें.मी. लम्बे, चौड़े एवं गहरे गड्ढे बनायें। प्रत्येक गड्ढे में 30-40 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 1 कि.ग्रा. नीम की खली, गड्ढे से निकाली गयी ऊपर की मिट्टी में मिलाकर गड्ढे को जमीन से 20 सें.मी. की ऊंचाई तक भर दें। प्रारंभिक दो-तीन वर्षों में बगीचों के रिक्त स्थानों में खरीफ में लोबिया, ज्वार, उड़द, मूंग एवं सोयाबीन की फसलें उगायें।

नीबू

- **केले** की रोपाई का यह उपयुक्त समय है। केला उगाने के लिए, अच्छे निकास वाली, पर्याप्त उपजाऊ और नमी की क्षमता वाली मृदा का चयन करें। उच्च नाइट्रोजन युक्त मृदा, पर्याप्त फॉस्फोरस और उच्च स्तर की पोटाश वाली मृदा में केले की खेती अच्छी होती है। जल जमाव, कम हवादार और कम पौष्टिक तत्वों वाली मृदा में इसकी खेती नहीं करनी चाहिए। रेतीली, नमक वाली, कैल्शियम युक्त और अत्याधिक चिकनी मृदा में भी इसकी खेती न करें।
- गर्मियों में, कम से कम 3 से 4 बार जुताई करें। आखिरी जुताई के समय, 10 टन अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद या गाय का सड़ा हुआ गोबर मिट्टी में अच्छी तरह मिलायें। जमीन को समतल करने के लिए ब्लेड हैरो या लेजर लेवलर का प्रयोग करें। वे क्षेत्र जहां निमाटोड की समस्या होती है। वहां पर रोपाई से पहले निमाटीसाइड और धूमण गड्ढों में डालें।
- बिजाई के लिए मध्य फरवरी से मार्च का पहला सप्ताह उपयुक्त होता है। उत्तरी भारत में तटीय क्षेत्रों में, जहां उच्च नमी और तापमान जैसे 5-7 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान हो, वहां पर रोपाई के लिए 1.8 मीटर×1.8 मीटर से कम फासला नहीं होना चाहिए।
- केले की जड़ों को 45×45×45 सें.मी. या 60×60×60 सें.मी. आकार के गड्ढों में रोपित करें। गड्ढों को धूप में खुला छोड़ें। इससे हानिकारक कीट नष्ट हो जायेंगे। गड्ढों को 10 कि.ग्रा. गोबर की खाद या सड़ा हुआ गोबर, नीम खली 250 ग्राम और कार्बोफ्यूरॉन 20 ग्राम से भरें। जड़ों को गड्ढे के मध्य में रोपित करें और मिट्टी के आसपास अच्छी तरह से दबायें। गहरी रोपाई न करें।
- यदि फासला 1.8×1.5 मीटर लिया जाये तो प्रति एकड़ 1452 पौधे लगाएं। यदि फासला 2 मीटर×2.5 मीटर लिया जाये, तो एक एकड़ में 800 पौधे लगाने की सिफारिश की जाती है।
- रोपाई के लिए, सेहतमंद और संक्रमण रहित जड़ों या राइजोम का प्रयोग करें। रोपाई से पहले, जड़ों को धोएं और क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई सी 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में डुबोयें। फसल को राइजोम की सूंडी से बचाने के लिए रोपाई से पहले कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत सीजी 33 ग्राम में जड़ों को डुबोयें और उसके बाद 72 घंटों के लिए छांव में सुखाएं। गांठों को निमाटोड के प्रकोप से बचाने के लिए कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत सी जी 50 ग्राम से प्रति जड़ का उपचार करें। फ्यूजेरियम की रोकथाम के लिए, जड़ों को कार्बेण्डाजिम 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में 15-20 मिनट के लिए डुबोयें।
- अच्छी उपज के लिए इसे 70-75 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। सर्दियों में 7-8 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें और गर्मियों में 4-5 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। बारिश के मौसम में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। अतिरिक्त पानी को खेत में से निकाल दें क्योंकि यह पौधों की नींव और वृद्धि को प्रभावित करेगा।
- उन्नत सिंचाई तकनीक जैसे टपक सिंचाई का प्रयोग किया जा सकता है। रिसर्च के आधार पर केले की फसल में टपक सिंचाई करने से 58 प्रतिशत पानी की बचत होती है और 23-32 प्रतिशत उपज में वृद्धि होती है।
- **कीटों की रोकथाम:** यदि फल की सूंडी का प्रकोप दिखे, तो तने के चारों तरफ मिट्टी में कार्बेरिल 10-20 ग्राम प्रति पौधे में डालें। राइजोम की सूंडी की रोकथाम के लिए सूखे हुए पत्तों को निकाल दें और बाग को साफ रखें। रोपाई से पहले राइजोम को मिथाइल ऑक्सीडेमेटन 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में डुबो दें। रोपाई से पहले अरंडी की खली 250 ग्राम या कार्बेरिल 50 ग्राम या फोरेट 10 ग्राम प्रति गड्ढे में डालें।
- केले में चेंपा का प्रकोप दिखे तो मिथाइल डेमेटन 2 मि.ली या डाइमेथोएट 30 ईसी 2 मि.ली. को प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। थ्रिप्स की रोकथाम के लिए मिथाइल डेमेटन 20 ईसी 2 मि.ली. या मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यूएससी 2 मि.ली. को प्रति लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करें।
- जड़ों को निमाटोड के प्रकोप से बचाने के लिए, कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत सी जी, 504 ग्राम से प्रति जड़ का उपचार करें। यदि जड़ का उपचार न किया गया हो तो रोपाई के एक महीने बाद कार्बोफ्यूरॉन पौधे के चारों तरफ डालें।

लीची

- **लीची** एक महत्वपूर्ण स्वादिष्ट फल है। इसमें गूटी (लेयरिंग) द्वारा प्रवर्धन किया जाता है। गूटी द्वारा प्रवर्धन का सर्वोत्तम समय जून के दूसरे पखवाड़े से प्रारम्भ करें। इस माह में बांधी गयी गूटी से सर्वाधिक सफलता मिलती है।
- **अंगूर** को जल्दी तैयार करने एवं मिठास बढ़ाने के लिए 50 मिलीमीटर इथिफॉन एवं 100 ग्राम बोरेक्स को 100 लीटर पानी में घोलकर पकने के 15 दिनों पहले पौधों पर छिड़काव करने के बाद सिंचाई न करें।
- **बेर** के एक वर्ष के पौधे में 5.0 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस एवं 25 ग्राम पोटाश तथा यह मात्रा इसी अनुपात में आठ वर्ष तक बढ़ाते रहें। इसके उससे अधिक आयु के पौधों के लिए 40 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 400 ग्राम नाइट्रोजन, 400 ग्राम फॉस्फोरस एवं 250 ग्राम पोटाश प्रति पौधे की दर से प्रयोग करें। बेर में कटाई एवं छंटाई का कार्य समय से सम्पन्न करें।

कृषि खबरें, देश-विदेश की

हृदय स्वास्थ्य में लाभकारी कम कोलेस्ट्रॉल वाला अंडा

हृदय रोग से जूझ रहे लोग अब अंडे का स्वाद निसंकोच ले सकेंगे। केंद्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान (सीएआरआई) ने कम कोलेस्ट्रॉल वाला अंडा तैयार किया है। इस अंडे में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा सामान्य अंडे से लगभग 30 प्रतिशत तक कम है, जबकि अन्य जरूरी पोषक तत्वों की मात्रा 6 से 8 फीसदी अधिक पाई गई है। संस्थान ने इस तकनीक का पेटेंट भी ले लिया है और इसे हैदराबाद की एक कंपनी को ट्रांसफर भी कर दिया गया है। उम्मीद है कि यह स्वास्थ्यवर्धक अंडा जल्द ही बाजार में उपभोक्ताओं को उपलब्ध होगा। इस अंडे को तैयार करने के लिए संस्थान के वैज्ञानिक डा. प्रवीण त्यागी और उनकी टीम ने इस दिशा में गहन शोध किया। वे इस नतीजे पर पहुंचे कि अगर मुर्गियों के आहार में बदलाव किया जाए, तो अंडे की पोषण गुणवत्ता में भी फर्क आ सकता है।

इस दिशा में कदम बढ़ाते हुए टीम ने आयुर्वेदिक विशेषज्ञों से सलाह ली और एक विशेष हर्बल डाइट तैयार की। इस खास डाइट में मुर्गियों को तीन सप्ताह तक लहसुन, अदरक, दालचीनी, काला जीरा जैसे प्राकृतिक तत्वों से युक्त औषधीय दाना खिलाया गया। इन सभी पदार्थों में कोलेस्ट्रॉल कम करने वाले गुण पहले से ही आयुर्वेद में स्थापित हैं। जब इन मुर्गियों ने अंडे दिए, तो उनमें कोलेस्ट्रॉल का स्तर कम और ओमेगा-3 एवं ओमेगा-6 फैटी एसिड्स की मात्रा अधिक पाई गई। यह शोध न केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह हृदय रोगियों के लिए पोषण संबंधी विकल्पों को बढ़ाने की दिशा में बड़ा कदम है। अब अंडा केवल प्रोटीन का स्रोत नहीं, बल्कि एक हार्ट-फ्रेंडली फूड के रूप में देखा भी जा सकता है। ■

जलवायु परिवर्तन के कारण थार रेगिस्तान में बढ़ती हरियाली

भारत के थार रेगिस्तान में हरियाली में हो रही बढ़ोतरी ने वैज्ञानिकों का ध्यान खींचा है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, गांधीनगर के शोधकर्ताओं द्वारा किए गए अध्ययन में पाया गया है कि यह परिवर्तन जलवायु परिवर्तन और मानवीय गतिविधियों, जैसे भूजल दोहन का संयुक्त प्रभाव हो सकता है। अध्ययन में वर्ष 2001 से 2023 तक के उपग्रह चित्रों के विश्लेषण में स्पष्ट हुआ कि इस क्षेत्र में पेड़-पौधों की मौजूदगी और शहरीकरण में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। अध्ययन के अनुसार, हरियाली में औसतन 38 प्रतिशत की बढ़ोतरी दर्ज की गई है। थार दुनिया के सबसे अधिक जनसंख्या वाले रेगिस्तानों में शामिल है। यहां बीते वर्षों में शहरी क्षेत्रों में लगभग 50 से 80 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है, जो दुनिया के अन्य 14 प्रमुख रेगिस्तानों की तुलना में सबसे अधिक है।

मानसून के मौसम में बारिश की मात्रा बढ़ना और अन्य मौसमों में भूजल का अत्यधिक दोहन इस बदलाव के पीछे अहम कारण हैं। हालांकि, यह हरियाली एक स्थायी संकेत नहीं है। अध्ययन में चेतावनी दी गई है कि अनियमित वर्षा और भूजल के अत्यधिक उपयोग से यह लाभ उलट सकता है। इससे खाद्य सुरक्षा, कृषि और आजीविका को संकट हो सकता है। बढ़ता तापमान और घटती जल आपूर्ति, शहरीकरण एवं कृषि के लिए चुनौती बन सकती है। शोधकर्ताओं ने सुझाव दिया है कि टिकाऊ विकास के लिए जल प्रबंधन को बेहतर बनाना होगा। सूखा-सहनशील फसलों को बढ़ावा देना होगा और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का अधिक उपयोग करना होगा। यह बदलाव सतर्कता और संतुलन की मांग करता है, वरना हरियाली के पीछे छिपा संकट सामने आ सकता है। ■

प्रकृति का नुकसान बच्चों की सेहत पर भारी

प्राकृतिक पर्यावरण को हो रहा नुकसान अब बच्चों के स्वास्थ्य पर भी प्रभाव डाल रहा है। प्रदूषित वातावरण और जैव विविधता में कमी से संक्रमण और मानसिक दिक्कतें बढ़ी हैं। वायु और जल प्रदूषण, हरियाली की कमी और जलवायु परिवर्तन के कारण बच्चों में त्वचा और श्वास संबंधी रोग बढ़ते जा रहे हैं। यूरोपीय सोसाइटी फॉर पीडियाट्रिक रिसर्च द्वारा किए गए एक हालिया अध्ययन में यह बात सामने आई है, जिसे प्रतिष्ठित 'नेचर' पत्रिका में प्रकाशित किया गया है। शोध के अनुसार, जैव विविधता में गिरावट और हरियाली की कमी से वातावरण अधिक प्रदूषित हो रहा है और तापमान लगातार बढ़ रहा है। इसका सीधा असर बच्चों की रोगों से लड़ने की क्षमता पर पड़ रहा है। खासकर वे बच्चे जो हरियाली और प्राकृतिक माहौल से दूर रहते हैं, उनके रोगी होने की आशंका ज्यादा है।

बच्चों पर पड़ रहे दुष्प्रभाव

- **वायु प्रदूषण:** इससे अस्थमा, समय से पहले जन्म और जन्म के समय कम वजन जैसी समस्याएं बढ़ रही हैं।
- **हीटवेव:** तेज गर्मी के कारण हीट स्ट्रोक और संक्रमण के मामले बढ़े हैं।
- **हरियाली में कमी:** बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर असर पड़ा है, उनकी शारीरिक सक्रियता घट गई है।

प्रकृति से जुड़ाव जरूरी

शोध में यह भी बताया गया है कि जिन बच्चों का जीवन प्रकृति के करीब है-जैसे जिनके घरों के पास जंगल, खेत या बाग-बगीचे हैं-वे मानसिक रूप से अधिक संतुलित पाए गए। इन बच्चों में मोटापा कम होता है और नींद की समस्याएं भी नहीं देखी गई। प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करना सिर्फ पेड़-पौधों या पशुओं के लिए नहीं, बल्कि बच्चों के वर्तमान और भविष्य के स्वास्थ्य के लिए भी बेहद जरूरी है। ■

प्रस्तुतिः गजेन्द्र

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹30

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाईपसैट एवं मुद्रित। सम्पादक: सुनीता अरोड़ा